अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

जुलाई २०२२

पूजा के रूप में किया गया कर्म

विषय-सूची

पूजा के रूप में किया गया कर्म

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय		३
पूजा के रूप में किया गया कर्म		५
कर्मों के द्वारा साधना		६
कार्यों के पीछे का संकल्प		१५
कार्यों का उद्देश्य		१९
भागवत कार्य में बाधाएँ		२७
कर्मों का आनन्द		३४
'पुरोधा'		
दैनन्दिनी		३५
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : मानसिक स्तर	नवजातजी	३८
श्रीमाँ के साथ रवीन्द्रजी का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४१
उमर की ऐसी की तैसी (कविता)	अटल बिहारी बाजपेयी	४३
मैं न होता तो क्या होता?		४४
आप ही का इन्तज़ार था...	वन्दना	४५
वक़्त (कविता)	अज्ञात	४९

मनुष्य कर्म कर सकता है और अन्दर शान्त-स्थिर बना रह सकता है। स्थिरता का अर्थ यह नहीं है कि मन शून्य हो जाये या कोई कार्य बिलकुल किया ही न जाये।

श्रीअरविन्द

मुखपृष्ठ-पुष्प

कार्य

आओ, हम अपना कार्य भगवान् के अर्पण कर दें, प्रगति करने का यह निश्चिततम मार्ग है।

(मुखपृष्ठ के पुष्प का श्रीमाँ द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

सन्देश

अचल-अटल, अक्षुब्ध बने रहो, निरुत्साहित हुए बिना अपना कार्य करते रहो, दिव्य शक्ति को अपने लिए कार्य करने के लिए पुकारो।

तुम्हारे लिए यह परीक्षा का क्षेत्र है—बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक परिणाम कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

श्रीअरविन्द

सम्पादकीय : श्रीअरविन्द के योग में कर्म सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। यहाँ ज़ोर मानवता की सेवा करने या किसी मानसिक आदर्श को पोसने पर नहीं दिया जाता, बल्कि हमारा ध्येय है, प्रभु की सेवा करना। मानवता की सेवा हमें कुछ विशाल बना सकती है, लेकिन फिर भी बहुत बार यह उस राजसिक अहंकार द्वारा हम पर फेंका हुआ एक ऐसा आवरण होता है जो दूसरों का भला करने में गर्व का अनुभव करता है। अपने अच्छे-से-अच्छे रूप में भी यह हमारे अन्दर का एक सात्त्विक भ्रम होता है जो हमें हमारी ठेठ मानव अवस्था से बाँध कर रखता है। लेकिन योग का अर्थ ही है कि हम मानव-सूत्र की जकड़ को शिथिल कर, उसके पार जाकर प्रभु का यन्त्र और उनकी वाहिका बन जायें ताकि 'वे' अपनी समृद्धियाँ पृथ्वी पर उँडेल सकें। यह सबसे अच्छी तरह उन कर्मों द्वारा किया जाता है जिन्हें हम अपनी सम्पूर्ण सत्ता के नैवेद्य तथा प्रार्थना के रूप में प्रभु को समर्पित कर देते हैं... प्रभु की सेवा द्वारा हमारी मानव सत्ता ऊर्जस्वी, 'भागवत सत्ता' तथा उसकी 'रूपान्तरकारी शक्ति' के सम्पर्क में आ जाती है।

हमारा यह अंक सर्वांगीण योग के इसी पहलू को निवेदित है।

हे दिव्य 'प्रेम', सर्वोच्च 'ज्ञान', पूर्ण 'एकत्व', दिन के हर क्षण मैं तुझे पुकारती हूँ ताकि केवल तेरे सिवाय और कुछ न होऊँ!

वर दे कि यह यन्त्र तेरी सेवा करे और इस बात से सचेतन रहे कि यह एक यन्त्र है और वर दे कि मेरी समस्त चेतना, तेरी चेतना में मिल कर सभी चीज़ों का तेरी दिव्य दृष्टि से ही अवलोकन करे।

हे प्रभो, प्रभो, वर दे कि तेरी परम शक्ति अभिव्यक्त हो; वर दे कि तेरा कार्य सम्पन्न हो और तेरा सेवक पूरी तरह से तेरी सेवा के लिए ही समर्पित हो।

वर दे कि "अहं" हमेशा के लिए ग़ायब हो जाये, रह जाये केवल एक यन्त्र।

३ मई १९१४ **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १, पृ. ८१

पूजा के रूप में किया गया कर्म

सच्ची सेवा

आज सवेरे जैसे ही मैंने यह पूछते हुए कि तेरी सेवा करने का सबसे अच्छा उपाय क्या है, इस महीने पर नज़र डाली जो शुरू हो रहा है तो मैंने अपने अन्दर नीरवता में मर्मर की तरह एक छोटी-सी आवाज़ सुनी और उसने मुझसे यह कहा, "देखो, बाहरी परिस्थितियों का महत्त्व कितना कम है। 'सत्य' की अपनी कल्पना को पाने के प्रयास में इतना घोर परिश्रम और तनाव क्यों? अधिक सुनम्य और अधिक विश्वस्त रहो। तुम्हें केवल एक ही चीज़ करनी चाहिये, अपने-आपको किसी चीज़ से परेशान न होने दो। अच्छी चीज़ें करने के लिए अपने-आपको कष्ट देना भी दुर्भावना-जैसे बुरे परिणाम ही लाता है। 'सच्ची सेवा' की एकमात्र सम्भावना गहरे जलों की निश्चलता में रहती है।" और यह उत्तर इतना आलोकमय, इतना शुद्ध था, वह अपने अन्दर ऐसी प्रभावकारी वास्तविकता लिये हुए था कि जिस स्थिति का वर्णन किया गया था वह बिना कठिनाई के मेरे अन्दर सञ्चारित हो गयी। मुझे ऐसा लगा कि मैं निस्तब्ध गहरे जलों में उतरा रही हूँ। मैं समझ गयी; मैंने स्पष्ट देखा कि कौन-सी वृत्ति सबसे अच्छी है और अब मुझे तुझसे केवल यही याचना करनी है कि हे 'सर्वोच्च स्वामी', हे 'परम गुरु', मुझे वह बल और अतीन्द्रिय दृष्टि प्रदान कर जो अपने-आपको सदा इस स्थिति में बनाये रखने के लिए ज़रूरी है।

"बालक, अपने-आपको कष्ट न दे, नीरवता, शान्ति, शान्ति।"

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. २१

कर्मयोग की भावना के बारे में *गीता* का कहना है कि महान् चेतना की अभीप्सा में अपने-आपको, अपने दुःख-दर्दों को भूल जाओ, यह अनुभव करो कि एक महान् 'शक्ति' संसार में कार्य कर रही है और संसार के कर्म में अपना योगदान देने के लिए स्वयं को एक यन्त्र बना लो, भले तुम्हारा योगदान बहुत अल्प ही क्यों न हो। लेकिन, जो भी कार्य करो, जो भी पथ अपनाओ, अपना तन-मन उसमें न्योछावर कर दो। विभक्त और डगमगाते संकल्प के साथ तुम किसी भी चीज़ में—न जीवन में, न ही योग में—सफलता पाने की आशा नहीं कर सकते। CWSA खण्ड २९, पृ. २३७-३८

कर्मों के द्वारा साधना

प्राण का परिवर्तन

अग्नि के प्रभाव से तुम्हारे प्राण के परिवर्तन का एक और विशेष लक्षण यह है कि तुम हँसते-हँसते कठिनाइयों और बाधाओं का सामना कर सकते हो। तुम अपनी भूलों के लिए टाट ओढ़ कर, भभूत लगा कर रोने-धोने नहीं बैठ जाते, या इसी क्षण उच्च स्तर तक न पहुँच पाने के कारण एकदम हतोत्साह नहीं हो जाते। तुम खिन्नता को एक मुस्कान से ही भगा देते हो। तुम्हारे लिए सौ भूलों का भी बहुत महत्त्व नहीं होता: एक मुस्कान के साथ तुम पहचान लेते हो कि तुमने भूल की है और मुस्कान के साथ ही यह निश्चय कर लेते हो कि भविष्य में यह मूर्खता फिर से नहीं दोहरायी जायेगी। सभी खिन्नता और विषाद को विरोधी शक्तियाँ ही पैदा करती हैं, उन्हें तुम्हारे ऊपर उदासी फेंक कर जितनी ख़ुशी होती है उतनी और किसी चीज़ से नहीं होती। नम्रता एक चीज़ है और खिन्नता दूसरी ही चीज़। नम्रता एक दिव्य गति है और खिन्नता है अन्धकारमयी शक्तियों की बहुत ही अनगढ़ अभिव्यक्ति। इसलिए अपनी कठिनाइयों का प्रसन्नता के साथ सामना करो, निरन्तर प्रसन्नता के साथ रूपान्तर के मार्ग में आने वाली बाधाओं का मुक़ाबला करो। दुश्मन को खदेड़ने का सबसे अच्छा तरीक़ा है उसके मुँह पर हँसना! तुम उसके साथ कई-कई दिनों तक भिड़ते और टकराते रहो और उसकी शक्ति ज़रा भी कम होती हुई न दीखेगी; बस एक बार उसके सामने हँस दो और वह दुम दबा कर भाग जायेगा! आत्मविश्वास से और भगवान् पर श्रद्धा से भरी हँसी दुश्मन को सबसे अधिक तहस-नहस कर देने वाली शक्ति है—वह शत्रु के मोर्चे को तोड़ देती है, उसकी सेनाओं में खलबली मचा देती है और तुम्हें विजयी के रूप में आगे बढ़ाती है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १५३-५४

प्राण के बदलाव के लक्षण

कर्म में प्राण के आत्म-समर्पण के कुछ लक्षण ये हैं:

यह बोध (मात्र विचार या अभीप्सा नहीं) कि समस्त जीवन और कर्म

श्रीमाँ के हैं और इस आत्मार्पण और समर्पण में होता है, प्राणिक प्रकृति का तीव्र हर्ष। इसके फलस्वरूप शान्त-स्थिर परितृप्ति और कर्म तथा उसके व्यक्तिगत परिणामों के प्रति अहंजन्य आसक्ति का तिरोधान, परन्तु उसके साथ-ही-साथ कर्म में तथा भागवत उद्देश्य से अपनी क्षमताओं के उपयोग में महान् हर्ष।

यह अनुभव होते रहना कि प्रत्येक मुहूर्त भागवत शक्ति हमारे कर्मों के पीछे क्रियाशील है और वही हमारा पथ-प्रदर्शन कर रही है।

एक अटूट श्रद्धा-विश्वास जिसे कोई परिस्थिति या घटना भंग न कर सके। यदि कठिनाइयाँ आती हैं तो वे मानसिक सन्देह या तामसिक स्वीकृति को नहीं जगातीं, बल्कि इस सुदृढ़ विश्वास को उत्पन्न करती हैं कि सच्चा समर्पण होने पर भागवत शक्ति कठिनाइयों को हटा देगी, और इस विश्वास के साथ-साथ इस उद्देश्य में साधक उनकी ओर और अधिक मुड़ेगा और उन्हीं पर निर्भर रहेगा। जब साधक में पूर्ण श्रद्धा और समर्पण का भाव होता है तो उस समय दिव्य शक्ति को ग्रहण करने की क्षमता भी आ जाती है जो मनुष्य से यथार्थ कार्य कराती है और सही पद्धति ग्रहण कराती है और तब परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं और परिणाम दिखायी देने लगता है।

इस स्थिति पर पहुँचने के लिए आवश्यक चीज़ है, सतत अभीप्सा करते रहना, पुकारते रहना और आत्मोत्सर्ग करना और अपने अन्दर की या चारों ओर की जो चीज़ें पथ में बाधा डालती हैं उन सबका परित्याग करने का संकल्प बनाये रखना। कठिनाइयाँ तो आरम्भ में, और परिवर्तन के लिए जितने अधिक समय की आवश्यकता होगी उतने समय तक लगातार ही होंगी, परन्तु उनका सामना यदि सुस्थिर श्रद्धा, संकल्प तथा धैर्य के साथ किया जाये तो वे विलीन होने को बाध्य होंगी।

CWSA खण्ड २९, पृ. २३३-३४

साधारण जीवन तथा कर्मयोग

साधारण जीवन में कर्म व्यक्तिगत उद्देश्य और किसी मानसिक या नैतिक अनुशासन-तले अपनी किसी कामना को सन्तुष्ट करने के लिए किया जाता है, और कभी-कभी उसमें किसी मानसिक स्पर्श का पुट भी रहता है। *गीता* के योग में कर्म का अर्थ है—समर्पण के रूप में अपने सभी कर्म भगवान्

को न्योछावर कर देना, कामना-वासना पर विजय पाना, अहंकारशून्य तथा कामनारहित क्रिया करना, प्रभु के लिए भक्ति का होना, वैश्व चेतना में प्रवेश करना, सभी प्राणियों के साथ एकता का अनुभव करना और भगवान् के साथ एकात्मता प्राप्त करना। हमारे इस योग में इन सबके साथ-साथ अतिमानसिक प्रकाश तथा शक्ति के अवतरण (इसके अन्तिम उद्देश्य) और प्रकृति के रूपान्तर को भी जोड़ दिया गया है।
CWSA खण्ड २९, पृ. २३८

कर्मयोग वह है जिसमें साधक स्वयं अपना कार्य चुनता है पर उसे भगवान् को अर्पित करता है—'वह कर्म उसे दिया गया है' का तात्पर्य यह है कि वह अपने मन या हृदय या प्राण के किसी आवेग के वश उस ओर चालित हुआ है और यह अनुभव करता है कि उस आवेग के पीछे कोई वैश्व शक्ति अथवा वैश्व भगवत्-शक्ति विद्यमान है और वह अपने को यह देखने का प्रशिक्षण देने का प्रयास करता है कि सभी कर्मों के पीछे एकमेव दिव्य शक्ति विद्यमान रह कर उसके और दूसरों के अन्दर वैश्व 'उद्देश्य' को सिद्ध करती है।

एक बार जब वह प्रत्यक्ष समर्पण के आदर्श को ग्रहण कर लेता है तो उसे प्रत्यक्ष परिचालना या पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना होता है—यही कारण है कि वह जिसे मात्र मानसिक, प्राणिक या भौतिक आवेग समझता है जो उसकी अपनी या वैश्व प्रकृति से आते हैं, उन सबको वह त्याग देता है। निस्सन्देह, आत्म-समर्पण का पूर्ण अर्थ तो केवल उस समय प्रकट होता है जब वह तैयार हो जाता है।
CWSA खण्ड २९, पृ. २३८

हमारे प्रयत्न की शर्तें

हमारे प्रयत्न की निम्नलिखित शर्तें हैं और वे एक ऐसे आदर्श की ओर इंगित करती हैं जिन्हें इन सूत्रों में प्रकट किया जा सकता है—

ईश्वर में निवास करना, अहं में नहीं। एक विशाल आधार पर प्रतिष्ठित होकर कार्य करना, क्षुद्र अहम्मन्य चेतना पर प्रतिष्ठित होकर नहीं, बल्कि विश्व-आत्मा और विश्वातीत परम देव की चेतना पर प्रतिष्ठित होकर कार्य

करना।

सभी घटनाओं में और सभी सत्ताओं के प्रति पूर्णतया समभाव रखना और उन्हें इस रूप में देखना तथा अनुभव करना कि वे अपने साथ और भगवान् के साथ एक हैं। सभी को अपने में और सभी को ईश्वर में अनुभव करना; ईश्वर को सबमें तथा अपने-आपको सबमें अनुभव करना।

ईश्वर में निवास करते हुए कर्म करना, अहं में नहीं। यहाँ सबसे पहली बात यह है कि कर्म का चुनाव व्यक्तिगत आवश्यकताओं और मानदण्डों के विचार से नहीं, बल्कि ऊपर स्थित जीवन्त और सर्वोच्च सत्य के आदेश के अनुसार करना। इसके बाद, जैसे ही हम आध्यात्मिक चेतना में काफ़ी हद तक प्रतिष्ठित हो जायें, वैसे ही अपनी पृथक् इच्छाशक्ति या चेष्टा से कर्म करना छोड़ देना, बल्कि अपने से अतीत भागवत संकल्प की प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन की छाया में कर्म को उत्तरोत्तर होने और बढ़ने देना। अन्त में, चरम फलस्वरूप, उस उच्च अवस्था में उठ जाना जिसमें हमें भागवत शक्ति के साथ ज्ञान तथा शक्ति, चेतना, कर्म और सत्ता के आनन्द में तादात्म्य प्राप्त हो जाता है। इसके साथ ही एक ऐसी प्रबल क्रियाशीलता अनुभव करना जो मर्त्य कामना, प्राणिक अन्ध-प्रेरणा, आवेग और मायामय मानसिक स्वतन्त्र इच्छा के वशीभूत न हो, बल्कि अमर आत्म-आनन्द और अनन्त आत्म-ज्ञान में ज्योतिष्मान् रूप से विकसित हो। यही वह सक्रियता है जो प्राकृतिक मनुष्य को, सचेतन रूप में, दिव्य आत्मा और सनातन आत्मा के अधीन और उसमें निमज्जित कर देने से प्रवाहित होती है। आत्मा ही वह सत्ता है जो सदा से इस जगत्-प्रकृति के परे है और इसे सञ्चालित करती है।

CWSA खण्ड २३, पृ. १०१

कार्य करने का अतिमानसिक तरीक़ा

यदि तुम भगवान् के कामों के सच्चे कर्ता बनना चाहते हो तो तुम्हारा पहला लक्ष्य यही होना चाहिये कि तुम सारी कामनाओं से और अपने-आपको सर्वस्व मानने वाले अहंकार से सर्वथा मुक्त हो जाओ। तुम्हारा सारा जीवन भगवान् के प्रति निवेदन और यज्ञ-रूप होना चाहिये। कर्म में तुम्हारा एकमात्र लक्ष्य हो, भगवती शक्ति की सेवा करना, उन्हें ग्रहण और चरितार्थ करना,

और उनके कार्यों में उन्हें प्रकट करने वाला यन्त्र बनना। तुम्हें भागवत चेतना में तब तक विकसित होते जाना होगा जब तक तुम्हारी इच्छा और उनकी इच्छा में कोई भेद न रह जाये, तुम्हारे अन्दर उनकी प्रेरणा के अतिरिक्त कोई और प्रेरक हेतु न रहे, कोई कर्म ऐसा न हो जो तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे द्वारा होने वाला उन्हीं का सचेतन कर्म न हो।

जब तक तुम इस सम्पूर्ण सक्रिय एकत्व के योग्य नहीं हो जाते तब तक तुम्हें यही मानना चाहिये कि तुम्हारी देह और आत्मा माँ की सेवा के लिए ही बनी हैं, जो सब कुछ उन्हीं के लिए करती हैं। यदि तुम्हारे अन्दर यह बोध प्रबल हो कि तुम एक अलग कर्ता हो और तुम यह अनुभव करो कि तुम ही कर्म कर रहे हो तब भी कर्म माँ के लिए ही किया जाना चाहिये। अहंकारमय पसन्द के सभी कार्य, वैयक्तिक लाभ की सारी लालसा और स्वार्थभरी कामनाओं की सारी माँगों को प्रकृति में से मिटा देना होगा। फल की कोई माँग या पुरस्कार की कोई चाहना शेष न रहे। तुम्हारे लिए एकमात्र फल है भगवती माँ की प्रसन्नता और उनके कार्य की पूर्ति। तुम्हारा एकमात्र पुरस्कार होगा भागवत चेतना, शान्ति, बल और आनन्द में उत्तरोत्तर वृद्धि। सेवा का आनन्द और कर्मों के द्वारा आन्तरिक विकास का आनन्द ही निःस्वार्थ कार्यकर्ता के लिए यथेष्ट पुरस्कार है।

पर एक समय आयेगा जब तुम अधिकाधिक यह अनुभव करोगे कि तुम यन्त्र हो, कर्ता नहीं। क्योंकि पहले तो अपने भक्ति-बल द्वारा भगवती माँ के साथ तुम्हारा सम्बन्ध इतना घनिष्ठ हो जायेगा कि सारे समय उनका उपस्थित पथ-प्रदर्शन, उनका सीधा आदेश या प्रेरणा पाने के लिए तुम्हें केवल एकाग्र होकर सब कुछ उनके हाथों में सौंपना होगा। इस बात का निश्चित संकेत पाने के लिए कि क्या करना है, कैसे करना है और उसका क्या फल होगा? बाद में तुम यह अनुभव करोगे कि भगवती शक्ति तुम्हें केवल प्रेरणा ही नहीं देतीं, मार्ग ही नहीं दिखातीं बल्कि तुम्हारे कर्मों को शुरू भी करती हैं और पूरा भी, तुम्हारी सारी गतियाँ उन्हीं से निकलती हैं, तुम्हारी सारी शक्तियाँ उन्हीं की हैं, तुम्हारे मन, प्राण और शरीर उन्हीं के कर्म के सचेतन और आनन्दमय यन्त्र हैं, उनकी लीला के साधन हैं, स्थूल जगत् में उनकी अभिव्यक्ति के साँचे हैं। इस एकता और निर्भरता से अधिक सुखद स्थिति और कोई नहीं हो सकती, क्योंकि यह पग तुम्हें

अज्ञान के संघर्ष और भारमय जीवन के प्रदेश की सीमा के पार ले जाता है, तुम फिर अपनी अध्यात्मसत्ता के सत्य में, उसकी गभीर शान्ति में, उसके तीव्र आनन्द में जा पहुँचते हो।

*

अन्तिम पूर्णता

जब यह रूपान्तर हो रहा हो तो यह पहले से कहीं अधिक आवश्यक हो जाता है कि तुम अपने-आपको अहंकार की समस्त विकृतियों के दोष से मुक्त रखो। किसी भी माँग या हठ को लुक-छिप कर अपने अन्दर घुसने और आत्मदान और बलिदान को कलंकित न करने दो। कर्म में या फल में कोई आसक्ति न हो, अपनी कोई शर्त न रखी जाये, तुम्हें जिस शक्ति के अधीन रहना है, उस पर अपने अधिकार का कोई दावा न हो। भगवती के यन्त्र होने का कोई अभिमान, कोई घमण्ड या दम्भ न हो। मन में या प्राण और देह के किसी भी भाग में कोई ऐसी चीज़ न रहनी चाहिये जो तुम्हारे द्वारा काम करती हुई महती शक्ति की महत्ता को अपने निजी काम में लगा कर विकृत कर दे या उनका अपनी व्यक्तिगत और पृथक् तृप्ति के लिए प्रयोग करे। तुम्हारी श्रद्धा, तुम्हारी सच्चाई और तुम्हारी अभीप्सा की विशुद्धता सम्पूर्ण हो और सत्ता के सब क्षेत्रों और स्तरों में व्याप जाये। तब, विघ्न उत्पन्न करने वाला प्रत्येक तत्त्व, विकृत करने वाला प्रत्येक प्रभाव उत्तरोत्तर तुम्हारी प्रकृति से झड़ जायेगा।

इस परिपूर्णता की अन्तिम अवस्था तब आयेगी जब भगवती माँ के साथ तुम्हारा पूरा तादात्म्य होगा, जब तुम यह अनुभव करोगे कि तुम कोई पृथक् भिन्न सत्ता, यन्त्र, सेवक या कर्ता नहीं हो, वरन् वास्तव में भगवती माँ की सन्तान, उनकी चेतना और शक्ति के सनातन अंश हो। सदा वे तुम्हारे अन्दर रहेंगी और तुम उनके अन्दर; तुम्हें यह सतत, सहज और स्वाभाविक अनुभव होगा कि तुम्हारा सब सोचना, देखना, सुनना और कर्म करना, तुम्हारा श्वास-प्रश्वास और हिलना-डुलना भी उन्हीं से आता है, उन्हीं का है। तुम जानोगे, देखोगे और अनुभव करोगे कि उन्होंने ही तुम्हें अपने-आपमें से एक व्यक्ति और शक्ति के रूप में निर्मित किया है, अपने अन्दर से लीला के हेतु प्रकट किया है, और फिर भी तुम सदा उन्हीं के अन्दर सुरक्षित हो, उन्हीं की सत्ता के सत्, उन्हीं की चेतना की चेतना, उन्हीं

की शक्ति की शक्ति और उन्हीं के आनन्द के आनन्द हो। जब यह स्थिति पूर्ण होगी और अतिमानसिक शक्तियाँ तुम्हें बिना रोक-टोक के परिचालित कर सकेंगी, तभी तुम उनके दिव्य कर्मों में पूर्णता प्राप्त करोगे; तब ज्ञान, संकल्प और कर्म निश्चित, सरल, ज्योतिर्मय, अबाध, निर्दोष, परमेश्वर से निःसृत एक प्रवाह, शाश्वत की एक दिव्य गतिधारा होंगे।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १२-१३ **श्रीअरविन्द**

कार्य करते समय भगवान् को याद करना

जिन कठिनाइयों का तुम वर्णन करते हो वे सभी बिलकुल स्वाभाविक चीज़ें हैं और अधिकतर लोगों में होती हैं। जब मनुष्य ध्यान में शान्त-अचञ्चल बैठता है तब स्मरण करना और सचेतन रहना उसके लिए अपेक्षाकृत सहज होता है; परन्तु जब उसे कर्म में व्यस्त रहना पड़ता है तो यह कठिन होता है। स्मरण करते रहना और कर्म में सचेतन रहना यह धीरे-धीरे आने वाली चीज़ है, तुम्हें इसे एकदम तुरत-फुरत पाने की आशा नहीं करनी चाहिये; कोई व्यक्ति इसे एकदम तुरत-फुरत नहीं पा सकता। यह दो तरीक़ों से आता है,—पहले, यदि कोई व्यक्ति हर बार कोई कार्य करते समय श्रीमाँ को स्मरण करते रहने और उन्हें कर्म अर्पित करने का अभ्यास करता है (काम करते हुए सारे समय नहीं, परन्तु प्रारम्भ में या जब कभी वह स्मरण कर सके), तो यह धीरे-धीरे आसान और प्रकृति के लिए स्वाभाविक हो जाता है। दूसरे, ध्यान करने से एक आन्तरिक चेतना विकसित होना आरम्भ करती है जो, कुछ समय बाद, तुरन्त या एकाएक नहीं, अधिकाधिक अपने-आप स्थायी हो जाती है। मनुष्य इसे कार्य करने वाली बाहरी चेतना से पृथक् एक चेतना अनुभव करता है। प्रारम्भ में जब मनुष्य कर्म करता रहता है तब इस पृथक् चेतना को अनुभव नहीं करता, परन्तु जैसे ही वह कर्म बन्द कर देता है वह अनुभव करता है कि वह सारे समय वहाँ विद्यमान थी और पीछे से निरीक्षण कर रही थी; बाद में वह स्वयं कर्म के समय भी अनुभूत होने लगती है, मानों व्यक्ति की सत्ता के दो भाग हों—एक तो निरीक्षण करता और पीछे से सहारा देता हो और श्रीमाँ को स्मरण करता और उन्हें अर्पित करता हो तथा दूसरा कर्म कर रहा हो, जब ऐसा होता है तब सच्ची चेतना से कर्म करना अधिकाधिक आसान होता जाता है।

यही बात बाक़ी सभी चीज़ों पर भी लागू होती है। आन्तरिक चेतना का विकास होने पर जिन सभी चीज़ों की तुम चर्चा करते हो वे सब ठीक हो जायेंगी। उदाहरणार्थ, सत्ता के एक भाग में तो कर्म के लिए उत्साह है, पर दूसरा स्थिरता का दबाव अनुभव करता है और कर्म के लिए उतना इच्छुक नहीं होता। तुम्हारा मनोभाव उस चीज़ पर निर्भर करता है जो उस समय ऊपर आ जाती है—यही बात सब लोगों के साथ घटित होती है। दोनों को संयुक्त करना कठिन है, पर एक समय आता है जब वे अवश्य समन्वित हो जाती हैं—व्यक्ति आन्तरिक एकाग्रता में सन्तुलित रहता है जब कि दूसरी को उसके कर्म करने के प्रयास में वह सहारा देती है। स्वभाव का रूपान्तर करना, सत्ता की इन सभी विरोधी चीज़ों को समन्वित करना साधना का काम है। इसलिए इन चीज़ों को अपने अन्दर देख कर तुम्हें निरुत्साहित होने की आवश्यकता नहीं। मुश्किल से कोई व्यक्ति ऐसा होगा जिसने अपने अन्दर इन चीज़ों को न पाया हो। यह सब कुछ आन्तरिक दिव्य 'शक्ति' की क्रिया के द्वारा व्यवस्थित हो सकता है, बस इसके लिए साधक की सतत अनुमति और पुकार बनी रहनी चाहिये। स्वयं अपने-आप शायद वह इस कार्य को न कर सके, परन्तु अन्दर भागवत शक्ति का कार्य होने पर सब कुछ सम्पन्न हो सकता है।

CWSA खण्ड २९, पृ. २५९-६०

सामान्यतः निष्काम कर्म का अर्थ होता है, किसी कार्य को उसी कार्य के लिए करना या फिर कुछ भी बदले में चाहे बिना, किसी भी तरह के पुरस्कार या वैयक्तिक लाभ या प्रतिदान के, दूसरों के लिए कर्म करना; लेकिन योग में निष्काम कर्म का अर्थ होता है, बिना किसी भी शर्त या दावे के, भगवान् के लिए कर्म करना—केवल इसलिए कि यही 'भागवत इच्छा' है या तुम इसे भगवान् के लिए अपने अटूट प्रेम के वास्ते करते हो।

*

केवल अपनी आन्तरिक प्रगति तथा पूर्णता के लिए योगाभ्यास करना तुम्हारा लक्ष्य नहीं है, बल्कि भगवान् के लिए कोई कार्य करना भी तुम्हारा ध्येय होना चाहिये।

CWSA खण्ड २९, पृ. २३१ **श्रीअरविन्द**

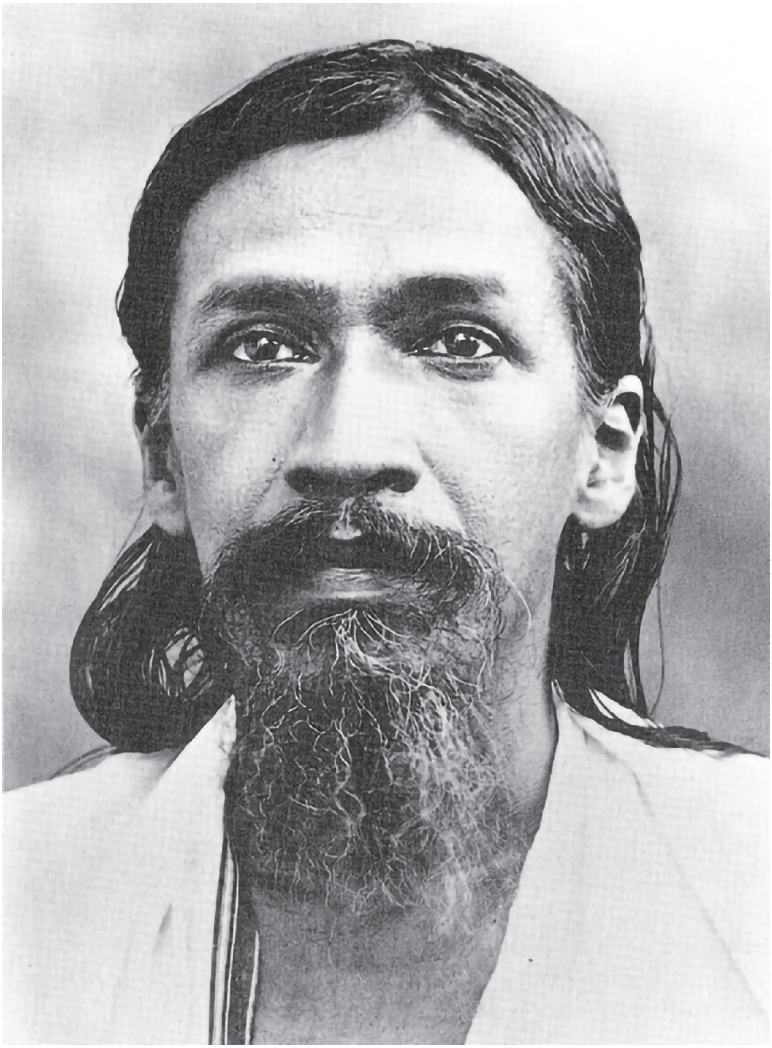

२९ दिसम्बर १९१६

हे मेरे मधुर स्वामी, अपने प्रेम का यन्त्र बनना मुझे सिखला।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ६४१ **श्रीअरविन्द**

कार्यों के पीछे का संकल्प

सच्ची चेतना का विकास करने और आत्म-संयम प्राप्त करने के मूल में सबसे बड़ी कठिनाई है, बिना पक्षपात के चुनाव करना तथा बिना कामना के कार्य सम्पन्न करना। इस भाव में चुनाव करने का तात्पर्य है, सच्ची वस्तु क्या है यह देखना और उसे जीवन में उतारना; और इस प्रकार चुनाव करना, किसी वस्तु, किसी व्यक्ति, कार्य और परिस्थिति के प्रति ज़रा भी व्यक्तिगत पक्षपात रखे बिना चुनाव करना ठीक वह कार्य है जो एक सामान्य मानव-प्राणी के लिए सबसे अधिक कठिन होता है। फिर भी बिना किसी पक्षपात के, सभी आकर्षणों और पसन्दगियों से मुक्त होकर, एकमात्र पथ-प्रदर्शक परम सत्य के पक्ष में खड़े होकर हमें कार्य करना सीखना होगा; और एक बार जब हम परम सत्य के अनुरूप आवश्यक कार्य का चुनाव कर लें तब हमें बिना किसी कामना के उसे कार्यान्वित करना होगा।

यदि तुम स्वयं को ध्यानपूर्वक देखो तो तुम्हें पता चलेगा कि काम करने से पहले तुम्हें एक आन्तरिक प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है, एक ऐसी चीज़ की आवश्यकता होती है जो तुम्हें आगे बढ़ाती है। साधारण मनुष्य में यह प्रोत्साहन प्रायः कामना होती है। इस कामना के स्थान पर परम सत्य के एक सुस्पष्ट, यथार्थ और सतत दर्शन को ला बिठाना होगा।

कुछ लोग इसे ईश्वर की 'वाणी' या ईश्वर की 'इच्छा' कहते हैं। इन शब्दों का सच्चा अर्थ विकृत हो गया है, इसलिए मैं "परम सत्य" कहना पसन्द करती हूँ, यद्यपि यह उस परम सद्वस्तु का एक बहुत ही सीमित पक्ष है जिसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता, परन्तु जो समस्त सत्ता का 'मूल स्रोत' और 'लक्ष्य' है। मैं जान-बूझकर 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग नहीं कर रही हूँ, क्योंकि धर्मों ने यह नाम एक ऐसी सर्वशक्तिमान् सत्ता को दे रखा है जो इस सृष्टि से भिन्न तथा इससे बाहर है। यह अयथार्थ है।

परन्तु भौतिक स्तर पर यह विभेद सुस्पष्ट है। क्योंकि अभी तक हम वही सब हैं जो हम नहीं होना चाहते, और वे, वे (भगवान्) वह सब हैं जो हम होना चाहते हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १-२

अपने संकल्प को दृढ़ बनाये रखो

अपने संकल्प को दृढ़ रखो। अपने उद्धत भागों के साथ ऐसा व्यवहार करो जैसा कहना न मानने वाले बालकों के साथ किया जाता है। उन पर लगातार और ध्यानपूर्वक क्रिया करते रहो, उन्हें उनकी भूल का एहसास दिला दो।

तुम्हारी चेतना की गहराइयों में विराजमान है चैत्य पुरुष, तुम्हारे अन्दर स्थित भगवान् का मन्दिर। यही वह केन्द्र है जिसके चारों ओर तुम्हारी सत्ता के इन सब विभिन्न भागों को, इन सब परस्पर-विरोधी गतियों को जाकर एक हो जाना चाहिये। तुम एक बार चैत्य पुरुष की चेतना को और अभीप्सा को पा लो तो इन सन्देहों और कठिनाइयों को नष्ट किया जा सकता है। इस काम में कम या अधिक समय तो लगेगा, परन्तु अन्त में तुम सफल अवश्य होओगे। तुमने एक बार भगवान् की ओर मुड़ कर कहा है : "मैं आपका होना चाहता हूँ," और भगवान् ने "हाँ" कह दिया है तो समस्त जगत् तुम्हें उनसे अलग नहीं रख सकता। जब केन्द्रीय सत्ता ने समर्पण कर दिया है तो मुख्य कठिनाई दूर हो गयी। बाह्य सत्ता तो एक पपड़ी की तरह है। साधारण लोगों में यह पपड़ी इतनी कठोर और मोटी होती है कि इसके कारण वे अपने अन्दर के भगवान् से सचेतन नहीं हो पाते। परन्तु यदि आन्तरपुरुष ने एक बार, क्षण-भर के लिए ही सही, यह कह दिया है : "मैं यहाँ हूँ और मैं तुम्हारा हूँ", तो मानों एक पुल बँध जाता है और यह बाहरी पपड़ी धीरे-धीरे पतली-से-पतली पड़ती जाती है और एक दिन आयेगा जब दोनों भाग पूर्ण रूप से जुड़ जायेंगे और आन्तर तथा बाह्य दोनों एक हो जायेंगे।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ९-१०

भागवत इच्छा को जानना

हम यह कैसे जान सकते हैं कि भागवत इच्छा क्या है?

हम इसे जानते नहीं, अनुभव करते हैं। इसे अनुभव करने के लिए हमें इतनी अधिक तीव्रता के साथ, इतनी अधिक सच्चाई के साथ इच्छा करनी चाहिये कि प्रत्येक बाधा दूर हो जाये। जब तक तुम्हारे अन्दर कोई अभिरुचि,

कोई कामना, कोई आकर्षण, कोई पसन्दगी है तब तक ये सब चीज़ें तुम से परम सत्य को छिपाये रखती हैं। अतएव, सर्वप्रथम कर्तव्य है अपनी चेतना की समस्त क्रियाओं पर प्रभुत्व स्थापित करने, शासन करने तथा उन्हें सुधारने तथा जो परिवर्तित न हो सकें उन्हें जड़मूल से निकाल बाहर करने का तब तक प्रयास करते रहना जब तक कि वे सभी क्रियाएँ परम 'सत्य' की एक पूर्ण एवं स्थायी अभिव्यक्ति न बन जायें।

और इसकी इच्छा करना ही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि बहुत बार हम इसकी इच्छा करना ही भूल जाते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि हमारे अन्दर एक ऐसी अभीप्सा हो जो हमारी सत्ता के अन्दर एक स्थायी अग्नि की तरह जलती रहे और जब-जब हमारे अन्दर कोई कामना, कोई अभिरुचि, कोई आकर्षण उठे तब-तब उसे इस अग्नि में झोंक दिया जाये। यदि तुम इसे लगातार करते रहो तो देखोगे कि तुम्हारी सामान्य चेतना के अन्दर सत्य-चेतना की एक क्षीण किरण उदित होने लगी है। प्रारम्भ में वह धीमी होगी, कामनाओं, अभिरुचियों, आकर्षणों और पसन्दगियों के समस्त कोलाहल के पीछे बहुत दूर होगी। परन्तु तुम्हें इन सबके पीछे जाना होगा और उस सत्य-चेतना को प्राप्त करना होगा जो पूर्णतः स्थिर, प्रशान्त और लगभग निश्चल-नीरव है।

जो लोग सत्य-चेतना के सम्पर्क में होते हैं वे एक साथ ही सभी सम्भावनाओं को देख लेते हैं और यदि आवश्यक हो तो जान-बूझकर अत्यन्त प्रतिकूल सम्भावना तक को चुन सकते हैं। परन्तु इस बिन्दु तक पहुँचने के लिए तुम्हें बहुत लम्बा रास्ता तय करना होगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २-३

भागवत संकल्प को जानना

तुम पूछोगे कि हम कैसे जानें कि भागवत संकल्प हमसे कब कार्य करवाता है? पर भगवान् के संकल्प को जानना कठिन नहीं है। वह असन्दिग्ध होता है। योग-मार्ग पर बहुत आगे बढ़े बिना ही तुम उसे जान सकते हो। बस, तुम्हें उसकी वाणी को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये, उस सूक्ष्म आवाज़ को जो यहाँ हृदय में होती है। एक बार तुम्हें उसे सुनने का अभ्यास हो जाये तो फिर यदि तुम भागवत संकल्प के विरुद्ध कुछ भी

करते हो तो तुम्हें एक प्रकार की व्याकुलता का अनुभव होता है। और यदि तुम उस ग़लत मार्ग पर हठपूर्वक चलते जाते हो तो तुम बहुत अधिक क्षुब्ध हो जाते हो। परन्तु यदि तुम अपनी इस व्याकुलता के लिए कोई बाह्य भौतिक बहाना ढूँढ़ निकालो और ग़लती करते ही जाओ तो तुम धीरे-धीरे अपनी बोध-शक्ति गँवा दोगे और अन्त में नाना प्रकार की भूलें करने पर भी किसी तरह की व्याकुलता का अनुभव न होगा। परन्तु पहली ही बार, ज़रा-सा क्षोभ होते ही यदि तुम रुक जाओ और अपनी आन्तरिक सत्ता से पूछो : "इस क्षोभ का कारण क्या है?" तो तुम्हें ठीक-ठीक उत्तर अवश्य मिल जाता है और सब कुछ बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। ज़रा-सी उदासी या साधारण-सी व्याकुलता का अनुभव होने पर उसके लिए कोई बाहरी बहाना मत बनाओ। कारण का पता लगाने के लिए जब तुम ठहर कर सोचो तो अपने हृदय को बिलकुल सरल और सच्चा रखो। पहले तुम्हारा मन सुन्दर और देखने में सच्चा लगने वाला कोई कारण बतायेगा। उसे स्वीकार मत करो, बल्कि उसके परे जाकर देखो और पूछो : "इस क्रिया के पीछे क्या है? मैं यह क्यों कर रहा हूँ?" अन्त में तुम एक छोटी-सी लहर को, अपने भाव की किसी ग़लत ऐंठन या किसी वक्रता को एक कोने में छिपा हुआ पाओगे जिसके कारण यह कष्ट और क्षोभ हो रहा है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ११-१२

साधना में दुःखी होना आवश्यक या अनिवार्य नहीं है, पर ऐसा होता है क्योंकि तुम्हारी आन्तरिक प्रकृति अपने लिए भागवत उपस्थिति का स्पर्श अपरिहार्य रूप से अनुभव करती है और जब वह उसे अनुभव नहीं करती तो दुःखी होती है : उसे सर्वदा अनुभव करने के लिए अन्तर में एक प्रकार की सतत अनासक्ति का होना आवश्यक है जो तुम्हें अपने अन्दर बने रहने दे और प्रत्येक कार्य अन्दर से ही करने दे। यह चीज़ अधिक आसानी से शान्त-स्थिर कार्यों और शान्त-स्थिर सम्पर्कों के समय की जा सकती है। क्योंकि सच पूछा जाये तो अचञ्चलता और अन्तर्मुखीनता ही भागवत उपस्थिति को अनुभव करने की क्षमता देती हैं।

'श्रीअरविन्द के पत्र' (२) से

कार्यों का उद्देश्य

साधना के बिना योग का लक्ष्य नहीं प्राप्त किया जा सकता। स्वयं कर्म को साधना के अंग के रूप में ग्रहण करना होगा। लेकिन स्वभावतः, जब तुम कर्म कर रहे हो तब तुम्हें कर्म की ही बात सोचनी होगी जिसे तुम एक यन्त्ररूप यौगिक चेतना से तथा भगवान् की स्मृति के साथ करना सीखोगे।
CWSA खण्ड २९, पृ. २३१

जिस कर्म से आध्यात्मिक शुद्धि होती है वह कर्म तो केवल वही कर्म है जो बिना किसी व्यक्तिगत उद्देश्य के लिए किया जाता है, जिसमें प्रसिद्धि या मान्यता अथवा लोकप्रतिष्ठा की कोई इच्छा नहीं होती, जिसमें अपने मनोरथों, प्राणगत लालसाओं और आवश्यकताओं या भौतिक अभिरुचियों का कोई आग्रह नहीं होता, जिसमें कोई अतिमान या अहम्मन्यता या अपनी मान-प्रतिष्ठा का कोई दावा नहीं होता, जो केवल भगवान् के लिए और भगवान् की ही आज्ञा से किया जाता है। अहंभाव के साथ जो कोई भी काम किया जाता है वह अज्ञानी जगत् के लोगों के लिए चाहे जितना भी अच्छा हो, योग के साधक के लिए किसी भी काम का नहीं है।
CWSA खण्ड २९, पृ. २३२

भागवत कार्य के लिए प्रशिक्षण

निस्सन्देह, यहाँ रह कर कार्य करना और बाहर के जगत् में रह कर कार्य करना समान नहीं है। वहाँ का कार्य विशेष रूप से भागवत कार्य नहीं है; लेकिन फिर भी यह इस भाँति अलग है कि साधकों को इसे कर्मयोग के भाव में करने की कोशिश करनी चाहिये—वस्तुतः, अपने-आपमें काम का नहीं बल्कि उस भाव का महत्त्व होता है जिसमें वह किया जाता है। *गीता* के अनुसार हमें सभी कर्म कामना के बिना, अनासक्त होकर, बिना जुगुप्सा या घृणा के, यथासम्भव उत्तम तरीक़े से करने चाहियें—अपने परिवार को ख़ुशी देने के लिए, अपनी पदोन्नति या अपने अधिकारियों की प्रसन्नता के लिए कार्य मत करो—करो केवल इस भावना के साथ कि चूँकि तुम्हें यह सौंपा गया है इसलिए इसे करना है। यह आन्तरिक प्रशिक्षण का क्षेत्र है,

और कुछ नहीं। कर्म करते हुए तुम्हें तीन चीज़ें सीखनी चाहियें—समानता, अनासक्ति और समर्पण-भाव। मैं फिर कहूँगा कि स्वयं कार्य का नहीं बल्कि उसे करने के तरीक़े का मूल्य है, उसे तुम्हें प्रभु को समर्पित कर देना चाहिये। इस तरीक़े से किया गया कार्य चाहे जो हो, वह महत्त्वपूर्ण हो उठता है। अगर तुम आध्यात्मिक रूप से इस तरह स्वयं को प्रशिक्षित करते रहो तो तुम सच्चे भाव में वह सब करने के लिए तैयार हो जाओगे जो सीधा भगवान् से आया हो (उदाहरण के लिए आश्रम का कार्य) और किसी भी दिन यह तुम्हें सौंपा जा सकता है।

CWSA खण्ड २९, पृ. २४०-४१

स्वभाव के दोषों से छुटकारा पाना

अपने दोषों को काम न करने का कारण बता कर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने की बनिस्बत कहीं ज़्यादा अच्छा होगा कि उनसे छुटकारा पाने के लिए काम को साधना के रूप में करो। इन प्रतिक्रियाओं को अपनी प्रकृति का स्वभाव मानने की बजाय कि उसे तो कभी बदला ही नहीं जा सकता, तुम्हें अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लेना होगा कि ये दोष अब तुम्हारे अन्दर कभी नहीं आयेंगे—और इसके लिए श्रीमाँ की सहायता को निरन्तर पुकारो कि उनकी शक्ति तुम्हारे प्राण को शुद्ध करके, तुम्हारे दोषों को पूरी तरह से निकाल बाहर करे। अगर तुम विश्वास करो कि तुम्हारे शरीर का कष्ट दोबारा आयेगा तो स्वभावतः वह निश्चित रूप से आयेगा, इसके स्थान पर, अपने मन में यह विचार जमा लो कि वह **नहीं** आयेगा तो वह सचमुच नहीं आयेगा। अगर वह आने की कोशिश करे तो उसे उठा कर अपने से परे फेंक दो।

*

साधक पर जब बाहरी संघर्ष, कष्ट तथा विपत्तियाँ आती हैं तो ये सचमुच उसके अहंकार और उसकी राजसिक कामना पर विजय पाने और सम्पूर्ण समर्पण को प्राप्त करने के साधन होते हैं। जब तक व्यक्ति अपनी सफलता पर आग्रह करता है, वह कार्य आंशिक रूप से, अपने अहंकार के लिए करता है; मुश्किलें तथा बाहरी असफलताएँ उसे यह चेतावनी देने आती हैं कि अभी वह कहाँ तक पहुँचा है और यह कि उसे पूर्ण समता को

उतारना है। इसका यह अर्थ नहीं है कि विजय की शक्ति को उसे प्राप्त नहीं करना है; लेकिन जो काम उसने हाथ में लिया है उसमें तुरन्त सफलता पाना सबसे महत्त्वपूर्ण नहीं है; महत्त्वपूर्ण है, महान् से अधिक महान् उचित दृष्टि तथा आन्तरिक 'शक्ति' को ग्रहण करने का बल प्राप्त करके उसे सञ्चारित करना और इस तात्कालिक विजय अथवा पराजय से वह न उल्लसित हो, न ही विक्षुब्ध, इसे शान्त भाव से और धीरज के साथ करना चाहिये।

कर्म में उचित मनोभाव

निस्सन्देह, कर्म का आध्यात्मिक फल आन्तरिक मनोभाव पर निर्भर करता है। सच पूछा जाये तो महत्त्वपूर्ण बात है, कर्म में प्रयुक्त पूजा का भाव। यदि कोई इसके साथ-साथ कर्म में श्रीमाँ को स्मरण कर सके या किसी विशेष एकाग्रता के द्वारा श्रीमाँ की उपस्थिति को अथवा कर्म को सहारा देने वाली या सम्पन्न करने वाली शक्ति को अनुभव कर सके तो वह आध्यात्मिक परिणाम को और भी अधिक बढ़ा देती है। परन्तु कोई यदि निराशा, अवसाद या संघर्ष के क्षणों में ये चीज़ें न भी कर सके फिर भी पीछे प्रेम या भक्ति बनी रह सकती है जो कर्म की मूल प्रेरक शक्ति थी और वह निराशा के पीछे बनी रह सकती और अन्धकार का काल बीतने पर सूर्य की तरह फिर से प्रकट हो सकती है। सभी साधनाओं में ऐसा ही होता है और इसी कारण किसी को अन्धकार के क्षणों के कारण निरुत्साहित नहीं होना चाहिये, बल्कि यह समझना चाहिये कि मूल उत्साह वहाँ विद्यमान है और इसलिए अन्धकार के मुहूर्त यात्रा के बीच में आने वाला केवल एक प्रसंग है जो एक बार समाप्त हो जाने पर किसी महत्तर प्रगति की ओर ले जायेगा।

CWSA खण्ड २९, पृ. २४१-४२

सब कुछ मनोभाव पर निर्भर करता है

बहरहाल, मैं कह सकता हूँ कि प्राचीन आध्यात्मिक भारत में व्यापार को जितनी बुरी या दूषित वस्तु माना जाता था उससे ज़रा भी अधिक बुरी या दूषित वस्तु मैं नहीं समझता। यदि मैं समझता तो मुझे 'अ' से अथवा बम्बई में पूर्व अफ़्रीका के साथ व्यापार करने वाले अपने शिष्यों से धन

न मिल पाता; और न तब मैं उन्हें अपना व्यापार करते रहने के लिए प्रोत्साहित ही कर पाता, बल्कि तब मुझे उनसे यह कहना होता कि इसे छोड़ो और केवल अपनी आध्यात्मिक उन्नति की ओर ध्यान दो। हम कैसे 'अ' की आध्यात्मिक ज्योति की खोज और उसकी मिल में सामञ्जस्य बैठाएँ? क्या मुझे उससे यह नहीं कह देना चाहिये कि अपनी मिल को स्वयं उसी के भरोसे और शैतान के हाथ में छोड़ दो और किसी आश्रम में जाकर ध्यान करो? यदि स्वयं मुझे भी व्यापार करने का आदेश मिला होता, जैसा कि मुझे राजनीति करने का आदेश मिला था, तो ज़रा भी आध्यात्मिक या नैतिक मनस्ताप के बिना मैंने वही किया होता। सब कुछ निर्भर करता है उस मनोभाव पर जिसके साथ कोई कार्य किया जाता है, उन सिद्धान्तों पर जिन पर वह कार्य आधारित होता है और उस उपयोग पर जिसकी ओर वह कार्य प्रयुक्त होता है। मैंने राजनीतिक कार्य किया है और अत्यन्त उग्र प्रकार का क्रान्तिकारी राजनीतिक, 'घोर कर्म', किया है, और मैंने युद्ध का समर्थन किया है और उसमें लोगों को भेजा है, यद्यपि राजनीति सर्वदा या बहुधा कोई बहुत निर्दोष कार्य नहीं होती और न युद्ध को ही कोई आध्यात्मिक कर्म कहा जा सकता है। परन्तु कृष्ण अर्जुन को अत्यन्त भयंकर प्रकार का युद्ध करने के लिए पुकारते हैं और उसके उदाहरण के द्वारा मनुष्यों को प्रत्येक प्रकार का मानवीय कर्म, *'सर्वकर्माणि'*, करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। क्या तुम दृढ़तापूर्वक यह कहते हो कि कृष्ण कोई आध्यात्मिक पुरुष नहीं थे और अर्जुन को दी हुई उनकी सलाह ग़लत थी या सिद्धान्ततः ग़लत थी? कृष्ण तो और आगे जाते और यह घोषित करते हैं कि यदि कोई मनुष्य अपनी मूल प्रकृति, स्वभाव और क्षमता द्वारा अधिप्रेरित कर्म को समुचित ढंग से और समुचित मनोभाव के साथ तथा अपने और उस कर्म के धर्म के अनुसार करे तो वह भगवान् की ओर अग्रसर हो सकता है। वे ब्राह्मण और क्षत्रिय की तरह ही वैश्य के कर्म और धर्म का समर्थन करते हैं। उनकी दृष्टि में मनुष्य के लिए यह बिलकुल सम्भव है कि वह व्यापार करे, धन कमाये, लाभ अर्जन करे और फिर भी आध्यात्मिक पुरुष बना रहे, योग का अभ्यास करे, आन्तरिक जीवन प्राप्त करे। *गीता* निरन्तर आध्यात्मिक मुक्ति के साधन के रूप में कर्मों का समर्थन करती और भक्ति तथा ज्ञान के साथ-साथ कर्मों

के योग का निर्देश देती है। परन्तु कृष्ण इस उच्चतर विधान को भी सबसे ऊपर स्थान देते हैं कि कर्म बिना कामना के, किसी फल या पुरस्कार के प्रति आसक्ति रखे बिना, किसी अहंकारपूर्ण मनोभाव या उद्देश्य के बिना, भगवान् की पूजा के रूप में, उनको अर्पित यज्ञ के रूप में करना चाहिये। इन चीज़ों के प्रति यही परम्परागत भारतीय मनोभाव है कि सभी कर्म किये जा सकते हैं यदि वे धर्म के अनुसार किये जायें और, यदि उन्हें समुचित ढंग से किया जाये तो वे भगवान् को प्राप्त करने से या आध्यात्मिक ज्ञान तथा आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने से नहीं रोकते।

CWSA खण्ड २९, पृ. २४८-४९

आध्यात्मिक पूर्णता की ओर बढ़ना

निस्सन्देह, एक संन्यासी-भाव भी है जो बहुतों के लिए आवश्यक है और आध्यात्मिक परम्परा में जिसका अपना स्थान है। मैं स्वयं भी यह कहूँगा कि कोई व्यक्ति यदि त्याग के भाव के साथ जीवन नहीं बिता सकता अथवा निःस्व वैरागी के जीवन के जैसे दरिद्र जीवन का अनुसरण नहीं कर सकता तो वह आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण नहीं हो सकता। स्पष्ट ही, धन, और धन कमाने की लालसा का उसके स्वभाव में उसी तरह अभाव होना चाहिये जिस तरह भोजन के लोभ या दूसरे किसी लोभ का अभाव तथा इन चीज़ों की समस्त आसक्ति का परित्याग उसकी चेतना से हो जाना चाहिये। परन्तु मैं जीवन की संन्यासी-पद्धति को आध्यात्मिक परिपूर्णता के लिए अनिवार्य अथवा उसके साथ अभिन्न नहीं मानता। एक आध्यात्मिक आत्म-प्रभुत्व का मार्ग है और भगवान् के प्रति आध्यात्मिक आत्म-दान तथा आत्म-समर्पण का मार्ग है जिसमें कर्म के बीच भी या किसी प्रकार के कर्म का या सभी प्रकार के कर्म का, जिसकी माँग भगवान् हमसे करते हैं, अहंकार और कामना का त्याग किया जा सकता है। यदि ऐसा न होता तो भारत में जनक या विदुर जैसे महान् आध्यात्मिक पुरुष न हुए होते और फिर कोई कृष्ण भी न हुए होते अथवा कृष्ण वृन्दावन और मथुरा और द्वारका के स्वामी अथवा राजा और योद्धा और कुरुक्षेत्र के सारथी न हुए होते, बल्कि एक अधिक महान् संन्यासी हुए होते। भारतीय शास्त्र और भारतीय परम्परा, महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों में भी, जीवन के त्याग-रूप

आध्यात्मिकता तथा कर्ममय आध्यात्मिक जीवन दोनों को स्थान देती है। कोई यह नहीं कह सकता कि केवल एक ही भारतीय परम्परा है और जीवन तथा सब प्रकार के कर्मों को, *'सर्वकर्माणि'* को, स्वीकार करना अ-भारतीय, यूरोपियन या पाश्चात्य और अनाध्यात्मिक है।

CWSA खण्ड २९, पृ. २५०

भागवत शक्ति को ग्रहण करना

जीवन के बाहरी मामलों में भागवत शक्ति को ग्रहण करने में समर्थ होने तथा उस शक्ति को अपने द्वारा कार्य करने देने के लिए तीन आवश्यक शर्तें हैं :

१. प्रशान्ति, समता—जो कुछ भी घटित हो उससे विचलित न होना, मन को स्थिर और दृढ़ बनाये रखना, शक्तियों की क्रीड़ा को देखते रहना लेकिन अपने-आप शान्त-स्थिर बने रहना।

२. पूर्ण श्रद्धा-विश्वास—यह श्रद्धा-विश्वास कि जो कुछ सर्वोत्तम है वही घटित होगा, पर यह श्रद्धा भी कि यदि कोई स्वयं को सच्चा यन्त्र बना सके तो फल वही होगा जिसे भागवत ज्योति द्वारा परिचालित उसकी इच्छा-शक्ति कर्तव्य-कर्म के रूप में देखती है।

३. ग्रहणशीलता—भागवत शक्ति को ग्रहण करने की और उसकी तथा उसके अन्दर श्रीमाँ की उपस्थिति को अनुभव करने की शक्ति तथा उसे कर्म करने देना, अपनी दृष्टि, संकल्प और कर्म को परिचालित करने देना। यदि इस शक्ति और उपस्थिति को अनुभव किया जा सके तथा इस नमनीयता को कर्मरत चेतना का अभ्यास बनाया जा सके,—लेकिन एकमात्र भागवत शक्ति के प्रति नमनीयता को, और उसमें किसी विजातीय तत्त्व को मिलाये बिना,—तो अन्तिम परिणाम सुनिश्चित है।

CWSA खण्ड २९, पृ. २६६

सब कुछ अन्दर से शान्त भाव के साथ करना चाहिये—काम करना, बातें करना, पढ़ना, लिखना सभी कुछ सच्ची चेतना के एक भाग के रूप में करना चाहिये—सामान्य चेतना की छितरी हुई और अशान्त क्रिया द्वारा नहीं।

CWSA खण्ड २९, पृ. २५४ ***श्रीअरविन्द***

ताल-छन्द

कोई भी भौतिक जीवन सुव्यवस्था और ताल-छन्द के बिना नहीं रह सकता। जब यह व्यवस्था बदलती है तब उसे किसी आन्तरिक विकास के अनुसार बदलना चाहिये, न कि किसी बाहरी नवीनता के लिए। सच पूछो तो सतही निम्न-प्राण-प्रकृति का ही एक विशेष भाग ऐसा होता है जो हमेशा स्वयं अपने लिए बाहरी परिवर्तन तथा नवीनता खोजता रहता है।

जब मनुष्य के अन्दर निरन्तर विकास होता रहता है केवल तभी वह निरन्तर नवीनता भी पाता रह सकता है और जीवन में स्थायी रस पा सकता है। इससे भिन्न दूसरा कोई सन्तोषजनक मार्ग नहीं है।

CWSA खण्ड २९, पृ. २७६

कार्य के बारे में सोचना

अपने काम के बारे में तभी सोचो जब वह किया जा रहा है, उससे पहले नहीं, उसके बाद भी नहीं।

जो काम ख़तम हो गया है उस पर अपने मन को जुगाली मत करने दो। वह अतीत में चला गया है और उस पर मन को फिर से लगाना शक्ति का अपव्यय करना है।

जिस काम को करना है उसका पूर्वानुमान करके अपने मन को थकाओ मत। जो 'शक्ति' तुम्हारे अन्दर काम कर रही है वह अपने समय पर उसे हाथ में ले लेगी।

मन की ये दोनों आदतें अतीत की कार्य-प्रणाली की चीज़ें हैं और इसी प्रणाली को हटाने के लिए रूपान्तरकारी 'शक्ति' तुम पर दबाव डाल रही है और तुम्हारा भौतिक मन इसका विरोध कर रहा है—यही है सचमुच तुम्हारे अन्दर के तनाव और तुम्हारी थकान का कारण। अगर तुम यह याद रखो कि अपने मन को तभी कार्य करने दोगे जब उसकी क्रिया की ज़रूरत हो, यह तनाव कम होते-होते चला जायेगा। यही है सचमुच अतिमानसिक क्रिया के भौतिक मन पर प्रभुत्व पाने और उसमें 'प्रकाश' की सहज क्रिया को उतारने से पहले की अवस्था।

CWSA खण्ड २९, पृ. २८७

भौतिक चीज़ों के साथ व्यवहार करना

भौतिक चीज़ों का तिरस्कार नहीं करना चाहिये—उनके बिना भौतिक जगत् में कोई अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

*

भौतिक चीज़ों का अपना जीवन और मूल्य होता है जो उनके दाम पर निर्भर नहीं करता। भौतिक चीज़ों का सम्मान करना और उनका सावधानी और ईमानदारी के साथ उपयोग करना योग का एक हिस्सा है, क्योंकि इसके बिना जड़-भौतिक पर कभी प्रभुत्व नहीं पाया जा सकता।

*

भौतिक चीज़ों के बारे में तुम जो कह रहे हो वह सच है—उनके अन्दर एक चेतना होती है, एक जीवन भी जो वैसा नहीं होता जैसा कि मनुष्य या पशु का जीवन या उनके अन्दर की चेतना होती है, लेकिन फिर भी वह होती है गुप्त, लेकिन साथ ही सत्य। इसी वजह से हमें भौतिक चीज़ों के प्रति मान-सम्मान होना चाहिये और उनका सही तरीक़े से उपयोग करना चाहिये, उनके साथ न कभी दुर्व्यवहार करना चाहिये न उनका दुरुपयोग, न उठा-पटक करनी चाहिये और न ही कठोरता और असावधानी के साथ उनका प्रयोग। सभी चीज़ें सचेतन या जीवित हैं यह भावना तब आती है जब हमारी अपनी भौतिक चेतना—केवल मन नहीं—अपने अन्धकार से बाहर निकल जाती है और सभी वस्तुओं में उन 'एकमेव' के बारे में और सर्वत्र 'भगवान्' के होने के बारे में सचेतन हो जाती है।

*

किसी भी क्रिया को साधना के अंश के रूप में लिया जा सकता है अगर उसे भगवान् को समर्पित करके किया जाये या इस चेतना तथा श्रद्धा के साथ किया जाये कि यह 'भागवत शक्ति' द्वारा किया जा रहा है। यही है महत्त्वपूर्ण बात।

CWSA खण्ड २९, पृ. २८७-८८, २९० **श्रीअरविन्द**

नियमित होने की योग्यता एक महान् शक्ति है, मनुष्य अपने समय और अपनी गतिविधियों का स्वामी बन जाता है।

श्रीअरविन्द

भागवत कार्य में बाधाएँ

मानवजाति की सेवा करने का विचार

महत्त्वाकांक्षा का एक अत्यन्त सामान्य रूप है मानवजाति की सेवा करने का विचार। इस प्रकार की सेवा या कार्य के प्रति किसी भी प्रकार की आसक्ति व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा का चिह्न है। जो गुरु यह समझता हो कि उसके पास मानवजाति को सिखाने के लिए कोई महान् सत्य है और जो बहुत से शिष्य चाहता हो तथा शिष्यों के चले जाने पर बेचैनी अनुभव करता हो अथवा जो कोई सामने आये उस पर अपना प्रभाव जमा कर उसे अपना शिष्य बना लेने की चेष्टा करता हो, वह स्पष्ट रूप से अपनी महत्त्वाकांक्षा का अनुसरण करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर रहा। यदि तुम भगवान् के आदेश का अनुसरण करने के लिए तैयार हो तो तुम्हें जो कोई भी काम दिया जाये—चाहे वह बहुत बड़ा काम हो—उसे स्वीकार करने के लिए तथा दूसरे ही दिन उसी शान्ति के साथ, जिसके साथ तुमने उसे स्वीकार किया था, छोड़ देने के लिए तैयार रहना चाहिये, और यह नहीं समझना चाहिये कि उसका उत्तरदायित्व तुम पर है। किसी चीज़ या किसी विशेष प्रकार के जीवन से तुम्हें कोई आसक्ति नहीं होनी चाहिये। तुम्हें पूरी तरह स्वतन्त्र होना चाहिये। यदि तुम सच्ची यौगिक स्थिति में रहना चाहते हो तो तुम्हें इस योग्य होना चाहिये कि भगवान् की ओर से जो कुछ आये उसे स्वीकार कर सको और आसानी से बिना पछताये छोड़ भी सको। "मैं कुछ नहीं चाहता" कहने वाले वैरागी और "मुझे यह चाहिये" कहने वाले संसारी मनुष्य—दोनों की मनोवृत्ति एक ही है। सम्भव है कि वैरागी अपने त्याग के भाव से उतना ही आसक्त हो जितना संसारी अपनी सम्पत्ति से।

तुम्हें उन सभी वस्तुओं को—और केवल उन्हीं वस्तुओं को—स्वीकार करना चाहिये जो भगवान् के यहाँ से आती हैं। क्योंकि वस्तुएँ छिपी हुई इच्छाओं से भी आ सकती हैं। इच्छाएँ अवचेतना में कार्य करती हैं और तुम्हारे पास ऐसी वस्तुएँ ले आती हैं जिन्हें तुम चाहे न भी पहचान सको, लेकिन ये भगवान् के यहाँ से नहीं, बल्कि छद्मवेशी इच्छाओं से आती हैं।

जब कोई चीज़ भगवान् के यहाँ से आती है तो तुम आसानी से जान

सकते हो। तुम अपने को स्वतन्त्र अनुभव करते हो, अनुद्विग्न और स्वस्थ पाते हो और शान्त रहते हो। परन्तु किसी चीज़ के मिलने पर यदि तुम उस पर टूट पड़ते हो और मारे ख़ुशी के चिल्ला उठते हो: "आख़िरकार यह मुझे मिल ही गयी" तो तुम्हें निश्चयपूर्वक यह समझ लेना चाहिये कि वह चीज़ भगवान् के यहाँ से नहीं आयी। भगवान् के साथ युक्त होने और सम्मिलन के लिए प्रधान शर्त है, समचित्तता।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १२-१३

महत्त्वाकांक्षा एक नासूर है

महत्त्वाकांक्षा के कारण अनेक योगियों का विनाश हुआ है। यह नासूर बहुत दिनों तक छिपा रह सकता है। इसका ज़रा भी भान न रखते हुए अनेक मनुष्य योग करना आरम्भ कर देते हैं। परन्तु जब उन्हें शक्ति प्राप्त होती है, तब उनकी महत्त्वाकांक्षा भड़क उठती है, यह भड़क और भी अधिक प्रचण्ड होती है, क्योंकि आरम्भ में ही इसे निकाल फेंका नहीं गया।

*

एक योगी के बारे में एक कहानी है जिसने अद्‌भुत शक्तियाँ प्राप्त कर ली थीं। एक बार उसके शिष्यों ने उसे एक बहुत बड़े भोज में निमन्त्रित किया। भोजन एक बड़ी और नीची मेज़ पर परोसा गया। अब उन शिष्यों ने अपने गुरु से कहा: "आप अपनी शक्ति को किसी रूप में दिखाइये।" वह जानता था कि यह नहीं करना चाहिये, किन्तु महत्त्वाकांक्षा का बीज उसमें मौजूद था और उसने सोचा: "आख़िर, यह बहुत निर्दोष-सी चीज़ है और इससे इन लोगों को यह विश्वास हो जायेगा कि ऐसी चीज़ें सम्भव हैं और इन्हें ईश्वर की महानता की शिक्षा मिलेगी।" इस प्रकार विचार करके उसने कहा: "मेज़ को हटा लो, केवल मेज़ को, उस पर बिछा हुआ मेज़पोश और समस्त थालियाँ ज्यों-की-त्यों पड़ी रहने दो।" यह सुन कर उसके शिष्य चिल्ला उठे: "ओह! यह नहीं किया जा सकता। सब कुछ गिर जायेगा।" परन्तु उसने आग्रह किया और शिष्यों ने मेज़पोश के नीचे से मेज़ हटा ली। अब देखो चमत्कार, मेज़पोश और उसके ऊपर का सारा सामान ठीक उसी तरह पड़ा रहा, मानों मेज़ नीचे हो। शिष्य हैरान रह गये। परन्तु हठात् गुरु वहाँ से कूद कर चीखते-चिल्लाते हुए भागे,

उन्होंने कहा : "अब कभी शिष्य नहीं बनाऊँगा, कभी नहीं! मुझ पर वज्र गिरे! मैंने अपने भगवान् के साथ द्रोह किया है।" उसके हृदय में आग जल रही थी, उसने स्वार्थ के लिए भागवत शक्तियों का उपयोग किया था।

*

शक्तियों का प्रदर्शन करना हमेशा ग़लत होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि उनका कोई उपयोग ही नहीं होता। परन्तु जिस प्रकार वे प्राप्त हुई थीं उसी प्रकार उनका उपयोग भी होना चाहिये। वे भगवान् के साथ युक्त होने पर आती हैं और उनका उपयोग भी भगवान् के संकल्प द्वारा ही होना चाहिये, प्रदर्शन के लिए नहीं। यदि किसी अन्धे मनुष्य से तुम्हारी भेंट हो और तुम्हारे अन्दर यह शक्ति हो कि तुम उसको आँखें दे सको तो—यदि भगवान् की यह इच्छा है कि वह देखने लगे तो तुम्हारा इतना ही कहना काफ़ी होगा : "यह देखने लगे" और वह देखने लगेगा। परन्तु यदि तुम उसको केवल इसलिए आँखें देना चाहते हो कि तुम्हारी इच्छा उसको अच्छा कर देने की हो तो तुम अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा को सन्तुष्ट करने के लिए ही शक्ति का उपयोग करोगे। ऐसी अवस्था में बहुधा तुम न केवल अपनी शक्ति को ही गँवा बैठते हो, बल्कि उस मनुष्य में भी भारी विक्षोभ उत्पन्न कर देते हो। यद्यपि बाहर से देखने में ये दोनों तरीक़े एकसमान हैं, किन्तु एक में तुम भगवान् की इच्छा के कारण काम करते हो और दूसरे में किसी व्यक्तिगत उद्देश्य से।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १०-११

आवश्यकता तथा कामना

"हमारे अन्दर प्राणमय सत्ता ही कामना और आवेग का, उत्साह और उग्रता का, क्रियाशील ऊर्जा और निराशापूर्ण अवसाद का, उत्तेजना और विद्रोह का घर है। वह हर चीज़ को सक्रिय कर सकती है, गढ़ सकती और उपलब्ध कर सकती है पर साथ ही वह हर चीज़ को बरबाद और एकदम चौपट भी कर सकती है। अतएव, मनुष्य में, उसके इस अंग को प्रशिक्षित करना सबसे अधिक कठिन मालूम होता है। इसके लिए लम्बे श्रम और महान् धैर्य की आवश्यकता होती है और यह कार्य पूर्ण सच्चाई की माँग करता है। क्योंकि, सच्चाई के बिना व्यक्ति प्रथम पग से ही धोख़ा

खाने लगेगा और प्रगति का उसका सारा प्रयास ही व्यर्थ हो जायेगा।"

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ७

कामना और सच्ची आवश्यकता के बीच सीमा-रेखा का पता लगाना बहुत कठिन है, (निःसन्देह, यौगिक आदर्श तो यह है कि कभी कोई आवश्यकता अनुभव ही न की जाये और इसलिए कभी किसी चीज़ की कामना ही न हो) किन्तु यह लेख उन सभी सद्भावनापूर्ण लोगों के लिए लिखा गया है जो अपने-आपको जानने और संयमित करने का प्रयास करते हैं। और यहीं वास्तव में हमारे सामने एक ऐसी समस्या आ उपस्थित होती है जो हमसे अपरिमित सत्यनिष्ठा की माँग करती है, क्योंकि जीवन के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करने का प्राणसत्ता का सबसे पहला तरीक़ा ही है कामना का—और फिर ऐसी चीज़ें तो हैं ही जो आवश्यक होती हैं। किन्तु यह कैसे जाना जाये कि ये चीज़ें वास्तव में आवश्यक हैं, उनके लिए कोई कामना नहीं है?... इसके लिए हमें बहुत, बहुत ही ध्यानपूर्वक आत्म-निरीक्षण करना होगा। यदि तुम्हारे अन्दर कोई चीज़ ऐसी हो जो एक नन्हें से तीव्र स्पन्दन के जैसी अनुभूत होती हो तो तुम निश्चित रूप से मान सकते हो कि तुम्हारे अन्दर कामना दुबकी हुई है। एक उदाहरण लें, तुम कहते हो, "यह भोजन मेरे लिए आवश्यक है"—तुम मानते हो, कल्पना करते हो, सोचते हो कि तुम्हें अमुक चीज़ की आवश्यकता है और उस चीज़ को पाने के लिए आवश्यक उपाय करते हो। यह एक आवश्यकता है या कामना, यह जानने के लिए, तुम्हें अपने-आपको बहुत ध्यान से देखना होगा और स्वयं से पूछना होगा, "यदि यह चीज़ मुझे न मिल सकी तो क्या होगा?" तब, यदि तत्काल यह उत्तर मिले कि, "ओह, यह तो बहुत बुरा होगा", तो निश्चित समझो कि यह कामना ने सिर उठाया है। हर चीज़ के लिए यही बात है। प्रत्येक समस्या के समय तुम पीछे हटो, अपने-आप पर दृष्टिपात करो और पूछो, "देखूँ, यह चीज़ मुझे मिलती है या नहीं?" उस क्षण यदि तुम्हारे अन्दर कोई चीज़ प्रसन्नता से उछल पड़ती है तो तुम निश्चित हो सकते हो कि यह कामना है। इसके विपरीत, यदि कोई चीज़ तुमसे कहती है, "ओह, मुझे यह चीज़ नहीं मिलने वाली है", और तुम बहुत उदास अनुभव करते हो, तो यह चीज़ भी कामना है।

यदि तुम चाहते हो कि प्राणिक सत्ता तुम्हें धोख़ा न दे तो तुम्हें केवल बहुत सावधान ही नहीं रहना होगा बल्कि तुम्हारी सत्यनिष्ठा को प्रायः चमत्कारिक होना होगा—मैंने तुम्हें निरुत्साहित करने के लिए "चमत्कारिक" शब्द का व्यवहार नहीं किया है; इसके विपरीत, तुम्हारे अन्दर सत्यनिष्ठा के लिए और भी अधिक अभीप्सा जगाने के लिए कहा है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ५८-५९

अभिरुचियों का होना

अपनी अभिरुचियों को निष्प्रभावी कर देना चाहिये या उन्हें भूल जाना चाहिये?

वे तुम्हारे अन्दर होनी ही नहीं चाहियें!

जब मन शान्त हो जाता है, जब वह निर्णय देना, अपने तथाकथित ज्ञान के द्वारा स्वयं को आगे धकेलना बन्द कर देता है तब मनुष्य जीवन की समस्या को हल करना आरम्भ करता है। मनुष्य को निर्णय देने से दूर रहना चाहिये, क्योंकि मन केवल कर्म का एक यन्त्र है, सच्चे ज्ञान का यन्त्र नहीं—सच्चा ज्ञान कहीं और से आता है।

यदि मनुष्य निर्णय देने से दूर रहे तो वह 'सत्य' के अधिकाधिक यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करेगा और संसार के नव-दशांश दुःख-सन्ताप दूर हो जायेंगे।

यदि मन यह स्वीकार कर सके कि वह नहीं जानता तो संसार की महान् विशृंखला का काफ़ी हद तक शमन हो जायेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ३

प्राण द्वारा प्रशंसा की माँग करना

प्राण की सर्व-सामान्य माँगों में से एक है प्रशंसा की माँग। वह आलोचना से घृणा करता है और ऐसा व्यवहार नहीं चाहता जिससे यह लगे कि उसका महत्त्व कम है। लेकिन उसे हमेशा झिड़की और निन्दा के लिए तैयार रहना चाहिये और उन्हें पूरी शान्ति के साथ सह सकना चाहिये। उसे प्रशंसा की ओर ध्यान न देना चाहिये; यह न भूलना चाहिये कि आत्मतुष्टि की हर गति मिथ्यात्व के स्वामियों की वेदी पर एक भेंट

होती है। प्राण-शक्ति के सूक्ष्म जगत् की सत्ताएँ, जिनके साथ हमारे प्राण का सम्बन्ध होता है, अपने भक्तों की पूजा पर ही जीती और पनपती हैं। इसीलिए वे हमेशा नये-नये मत-मतान्तरों और धर्मों की प्रेरणा देती रहती हैं ताकि उनकी पूजा और ठकुरसुहाती का भोज कभी समाप्त न होने पाये। इसी तरह तुम्हारी अपनी प्राणिक सत्ता और उसके पीछे की प्राणिक शक्तियाँ दूसरों द्वारा की हुई ख़ुशामद को हज़म करके पनपती हैं, अपने अज्ञान को हृष्ट-पुष्ट करती हैं। लेकिन तुम्हें याद रखना चाहिये कि तुम्हारी तरह ही अज्ञान के उसी स्तर पर रहने वालों की प्रशंसा का वास्तव में कोई मूल्य नहीं है, वे उनकी आलोचनाओं की तरह ही व्यर्थ हैं। चाहे वे किसी भी स्रोत से क्यों न आती हों, वे बेकार और खोखली होती हैं। दुर्भाग्यवश, प्राण एकदम गले-सड़े भोजन के लिए भी लालायित रहता है और इतना लोभी होता है कि वह एकदम अक्षमता की मूर्ति से भी प्रशंसा स्वीकार कर लेता है। यहाँ मुझे पैरिस की कला-प्रदर्शनी के वार्षिक उद्घाटन का ख़याल आ रहा है जहाँ गणतन्त्र के राष्ट्रपति चित्रों को देखते हैं और बड़े अर्थपूर्ण ढंग से यह खोज करते हैं कि एक भूदृश्य है और दूसरा रूप-चित्र और चित्रकला के बहुत ही अन्तरंग आत्मशोधवाले ज्ञान की अदा के साथ टिप्पणियाँ करते हैं। चित्रकार भली-भाँति जानते हैं कि ये टीका-टिप्पणियाँ कितनी असंगत हैं फिर भी अपनी प्रतिभा के प्रमाण-स्वरूप राष्ट्रपति के कथन को उद्धृत करने का कोई मौक़ा नहीं चूकते। मानवजाति का प्राण कीर्ति और ख्याति के लिए कितना भूखा होता है!

लेकिन जिस चीज़ का सचमुच मूल्य है वह है, सत्य की राय। जब कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसका भागवत सत्य के साथ सम्बन्ध हो और जो उसे अभिव्यक्त भी कर सके तब उसकी दी हुई राय कोरी प्रशंसा या आलोचना नहीं होती। उससे प्रकट होता है कि भगवान् तुम्हारे बारे में क्या सोचते हैं, तुम्हारे गुणों का क्या मूल्य आँकते हैं, वह तुम्हारे प्रयासों पर उनकी अचूक मुहर होती है। तुम्हारी यही इच्छा होनी चाहिये कि 'सत्य' की उक्ति के सिवाय किसी का मान न करो; और इस तरह अपना मानदण्ड ऊँचा करने के लिए तुम्हें हमेशा अपने अन्दर अग्नि को, अन्तरात्मा की रूपान्तर की ज्वाला को प्रज्वलित रखना चाहिये। यह ध्यान देने-योग्य बात है कि जब यह अग्नि भभक उठती है तो तुम्हारे अन्दर उस सस्ती प्रशंसा के लिए

वितृष्णा-सी पैदा हो जाती है जो पहले बहुत सन्तोषप्रद मालूम होती थी और तुम यह समझ जाते हो कि प्रशंसा के लिए हवस अरूपान्तरित प्रकृति की एक निम्न गति थी। तुम्हारे अन्दर वर्तमान अपर्याप्तता का तीव्र भान भर कर अग्नि तुम्हें यह दिखाती है कि तुम्हारे आगे विकास का कितना बड़ा क्षेत्र पड़ा है। तुम्हें अपने गुणगान के प्रति इतनी अरुचि हो जाती है कि जो तुम्हें पहले अपने हितैषी लगते थे उनके प्रति तुम्हारे अन्दर कटुता आ जाती है और सभी आलोचना और निन्दा 'सत्य' के प्रति अभीप्सा में सुखद समिधा का रूप ले लेती हैं। तुम दूसरों के विरोध के कारण अपमानित या खिन्न नहीं होते। क्योंकि तुम, कम-से-कम, बहुत आसानी के साथ उसकी उपेक्षा कर सकते हो और अधिक-से-अधिक तुम उसे अपनी वर्तमान अनुपजाऊ अवस्था का एक और प्रमाण मानते हो जो तुम्हें अपने-आपसे ऊपर उठ कर भगवान् के प्रति समर्पण करने के लिए प्रेरित करती है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १५२-५३

लगभग सभी लोग परिणाम के विषय में आतुर होते हैं अथवा परिणाम प्राप्त करने के लिए महत्त्वाकांक्षी होते हैं। उन्हें परिणामों के विषय में उत्कण्ठित नहीं होना चाहिये; बस इसलिए कार्य करो कि तुमने जान लिया है कि यही काम है जिसे तुम्हें अवश्य करना चाहिये; अपने-आपसे कहो: "मैं इसे कर रहा हूँ, क्योंकि यही वह चीज़ है जिसे करना चाहिये, बाद में चाहे जो भी हो उससे मेरा कोई मतलब नहीं।"

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १६

इन चीज़ों पर विजय प्राप्त करना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है—अहंकार, क्रोध, व्यक्तिगत नापसन्दगियाँ, आत्मपरक संवेदनशीलता इत्यादि। कार्य कार्य के लिए नहीं बल्कि साधना के क्षेत्र के रूप में करना चाहिये ताकि तुम अपने निम्न व्यक्तित्व और उसकी प्रतिक्रियाओं से पिण्ड छुड़ा लो और भगवान् के प्रति पूर्ण आत्मोत्सर्ग कर सको। रही बात कार्य की, तो उसे श्रीमाँ द्वारा आयोजित या स्वीकृत संगठन के आदेशानुसार करना चाहिये। तुम्हें यह भी हमेशा याद रखना चाहिये कि यह उनका कार्य है, तुम्हारा व्यक्तिगत कार्य नहीं। CWSA खण्ड ३२, पृ. ४१

कर्मों का आनन्द

२३ अक्तूबर १९३७

उन लोगों के लिए एक प्रार्थना जो भगवान् की सेवा करना चाहते हैं

हे प्रभो! हे सर्वविघ्नविनाशक! तेरी जय हो!

वर दे कि हमारे अन्दर की कोई भी चीज़ तेरे कार्य में बाधक न हो।

वर दे कि कोई भी चीज़ तेरी अभिव्यक्ति में रुकावट न डाले।

वर दे कि हर वस्तु में तथा प्रत्येक क्षण तेरी ही इच्छा पूर्ण हो।

हम यहाँ तेरे सम्मुख उपस्थित हैं ताकि हमारे अन्दर, हमारी सत्ता के अंग-प्रत्यंग में, उसके प्रत्येक कार्य में, उसकी सर्वोच्च ऊँचाइयों से लेकर शरीर के क्षुद्रतम कोषों तक में तेरी ही इच्छा कार्यान्वित हो।

ऐसी कृपा कर कि हम तेरे प्रति सम्पूर्ण रूप से और सदा के लिए एकनिष्ठ बन सकें।

हम अन्य सब प्रभावों से अलग रहते हुए पूरी तरह तेरे ही प्रभाव के अधीन हो जाना चाहते हैं।

वर दे कि हम तेरे प्रति एक गभीर और तीव्र कृतज्ञता रखना कभी न भूलें।

कृपा कर कि प्रत्येक क्षण हमें जो अद्‌भुत वस्तुएँ तेरी देन के रूप में मिलती हैं, उनमें से किसी का भी कभी अपव्यय न करें।

ऐसा वर दे कि हमारे अन्दर की प्रत्येक चीज़ तेरे कार्य में सहयोग दे और सब कुछ तेरी सिद्धि के लिए तैयार हो जाये।

तेरी जय हो, हे परमेश्वर! हे समस्त सिद्धियों के अधीश्वर!

तू हमें अपनी 'विजय' में सक्रिय और ज्वलन्त, अखण्ड और अचल-अटल विश्वास प्रदान कर।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. २१६

'पुरोधा'

दैनन्दिनी

जुलाई

१. भागवत कृपा इतनी अद्‌भुत है कि तुम कुछ भी करो वह तुम्हें भागवत लक्ष्य की ओर देर या सबेर ले ही जायेगी।

२. यह कभी मत भूलो कि तुम्हारे जीवन का सच्चा उद्देश्य क्या है। प्रत्येक क्षण, प्रत्येक परिस्थिति में इस उद्देश्य को याद रखो। इस प्रकार तुम अपने अस्तित्व का अधिक-से-अधिक फ़ायदा उठा सकोगे।

३. भूतकाल की लहरों को अपने पास से बह कर दूर चले जाने दो, वे समस्त आसक्तियों और समस्त दुर्बलताओं को भी बहा ले जायें। भागवत चेतना का आलोकमय आनन्द उनका स्थान लेने के लिए प्रतीक्षा कर रहा है।

४. मैं प्रस्ताव करती हूँ कि हम केवल वही करें जो ठीक और उचित हो, भविष्य के बारे में बहुत अधिक न सोचें, उसे भागवत कृपा की निगरानी में रहने दें।

५. सफलता में से गुज़रना दुर्भाग्य में से गुज़रने की अपेक्षा अधिक कठिन अग्निपरीक्षा है। सफलता की घड़ी में मनुष्य को अपने-आपसे ऊपर उठने में अधिक जागरूक रहना चाहिये।

६. हमें सतत अभीप्सा की स्थिति में रहना चाहिये, लेकिन जब हम अभीप्सा न कर सकें तो हम एक बालक की सरलता के साथ प्रार्थना करें।

७. हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान् हमें हमेशा अधिकाधिक सिखाएँ, अधिकाधिक बोध दें, हमारे अज्ञान को छिन्न-भिन्न करें, हमारे मनों को प्रकाश दें।

८. दया के स्वामी, मुझे अपनी कृपा के योग्य बना।

९. प्रभु, हमें मिथ्यात्व से मुक्त कर, हम तेरे सत्य में तेरी विजय के योग्य और शुद्ध होकर उभरें।

१०. अपने-आपको भूल जाने का सबसे सरल मार्ग कौन-सा है?

हमेशा ठीक चीज़, ठीक ढंग से, ठीक समय पर करो।

११. हमारी चेतना एक छोटी-सी चिड़िया की तरह है, उसे अपने पंखों का उपयोग करना सीखना चाहिये।

१२. बहुत ऊँचे उड़ो और तब तुम गहराइयों को खोज लोगे।

१३. कोशिश छोटी-सी चीज़ है, लेकिन वह भविष्य के लिए प्रतिज्ञा हो सकती है।

१४. हम सदा बदलते हुए ऊपरी दृश्यों को ही न देखा करें। हर चीज़ में और हर जगह केवल भगवान् की अपरिवर्तनशील एकता का ही मनन करें। जो अपने हृदय के अन्दर सुनना चाहता है उससे सारी सृष्टि भगवान् की बातें करती है।

१५. हम वैश्व जीवन के एक विशेष सौभाग्यशाली मुहूर्त में हैं जब धरती की हर चीज़ को नयी सृष्टि के लिए, बल्कि यूँ कहें, शाश्वत सृजन के अन्दर एक नयी अभिव्यक्ति के लिए तैयार किया जा रहा है।

१६. हर एक के लिए सबसे अच्छी बात यह है कि वह जितनी अधिक सच्चाई से हो सके, प्रगति करे।

भौतिक कष्ट रूपान्तर के कार्य का भाग है और उन्हें शान्ति के साथ स्वीकार कर लेना चाहिये।

१७. चरित्र बदल सकता है और बदलना भी चाहिये, लेकिन यह एक लम्बा और बारीक काम है जिसमें स्थायी प्रयास और बहुत सच्चाई की ज़रूरत है।

१८. जिसका आरम्भ हो-हल्ले से होता है उसका अन्त असफलता में होता है।

हमेशा शिकायत करना केवल समय और ऊर्जा की बरबादी है।

१९. युवा रहो, कभी पूर्णता की दिशा में प्रयास करना बन्द न करो।

२०. अगर तुम सच्चे, ईमानदार और निष्कपट हो तो मेरी सहायता ज़रूर तुम्हारे साथ रहेगी और एक दिन तुम उसके प्रति सचेतन हो जाओगे।

२१. हमेशा निष्ठावान् और अध्यवसायी रहो तो तुम्हें उपलब्धि में अपना भाग मिलेगा। आगे बढ़ो, हमेशा आगे बढ़ो, भय के बिना और संकोच के बिना आगे बढ़ो।

२२. बुढ़ापा आयु बड़ी हो जाने से नहीं आता बल्कि विकसित होने और

प्रगति करने की अयोग्यता के कारण अथवा विकसित होना और प्रगति करना अस्वीकार कर देने के कारण आता है।

२३. एकाग्र मनोयोग के समुचित प्रशिक्षण के द्वारा व्यक्ति किसी भी क्रिया को सम्पादित करने की पूरी-पूरी क्षमता अनिवार्य रूप से विकसित कर सकता है।

२४. औरों की आलोचना करने से पहले, ज़्यादा अच्छा है कि यह निश्चित रूप से जान लो कि स्वयं तुम पूरी तरह सच्चे हो।

२५. तुम्हें अहंकार पर विजय पानी चाहिये और जैसे ही तुम वह विजय पा लोगे वैसे ही तुम्हारे दुःख समाप्त हो जायेंगे।

२६. अभीप्सा करो, उचित भाव में एकाग्र होओ, और चाहे कैसी भी कठिनाइयाँ हों, तुमने अपने सामने जो लक्ष्य रखा है उसे तुम निश्चित रूप से पाओगे।

२७. तुम्हें अपनी इच्छा को विकसित और मज़बूत बनाना चाहिये तब तुम्हारा समय व्यर्थ में बरबाद न होगा।

२८. तुम और लोगों के साथ अपने सम्बन्ध के ब्योरों पर ध्यान देने की जगह अपने-आपको भगवान् के प्रति समर्पण के लिए ज़्यादा मज़बूत बनाने में लगाओ।

२९. किसी कठिनाई द्वारा अपने-आपको परेशान या हतोत्साह न होने दो। शान्ति और सरलता के साथ अपने-आपको माताजी की शक्ति की ओर खोलो और उसे अपने अन्दर परिवर्तन लाने दो।

३०. जीवन के प्रत्येक क्षण तुम एक ऐसा काम करते हो जो तुम्हें ख़ुशी प्रदान करता है और दूसरे ऐसे जो तुम्हें बेचैन बना देते हैं। यह बोध बच्चे में किसी बड़े की अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्ट होता है।

प्रत्येक सत्ता में, पृथ्वी में, विश्व में एक सत्य होता है। सत्ता, पृथ्वी और विश्व का इसी सत्य के द्वारा अस्तित्व है। यह अस्तित्व का आधार है। इस सत्य के बिना सत्ता, पृथ्वी और विश्व विलीन हो जायेंगे, क्षण-भर के लिए भी टिक न पायेंगे।

३१. निष्कपट हृदय संसार की समस्त असाधारण शक्तियों से श्रेष्ठ है। हर एक अपने अन्दर भगवान् को लिये रहता है और ज़रा से प्रयास से वह उन्हें पा सकता है और वही बन सकता है।

मानसिक स्तर

माताजी ने कहा है कि एक पुरानी परम्परा के अनुसार अगर सद्भाववाले बारह व्यक्ति अपनी अभीप्सा को एकत्र करके भगवान् को पुकारें तो भगवान् पृथ्वी पर प्रकट होंगे। मेरा ख़याल है कि हम एक ही पुस्तक पढ़ने, एक ही तरह की बातचीत करने और दिन-प्रतिदिन एक-सा ध्यान करने की जगह, जिसमें विशेष प्रगति नहीं होती, उन बारह में से एक व्यक्ति बनने की अभीप्सा करें।

हाँ तो, पहली चीज़ है इन आन्तरिक स्तरों की क्रिया को जानने की कोशिश करना और यह अधिकतर आत्म-निरीक्षण द्वारा किया जाता है। मैं तुमसे जो कह रहा हूँ वह एक संकेत-मात्र है। हर एक को आत्म-निरीक्षण में कुछ समय लगाना चाहिये। यह विचार मेरे अन्दर क्यों आया, मेरे अन्दर यह भाव क्यों जागा, मुझे यहाँ दर्द क्यों हो रहा है, इस जगह दबाव क्यों है। इसका विश्लेषण करने की कोशिश करो। हर बार जब कोई तुम्हारे साथ बात करे, चाहे तारीफ़ कर रहा हो या बुराई, कोई कहानी सुना रहा हो या राजनीति या साहित्य की बात कर रहा हो, उसके पीछे देखो, उसके शब्दों को बहुत महत्त्व न दो, शब्दों के पीछे की शक्ति को देखने की कोशिश करो, चीज़ों के मूल को देखो, इससे तुम्हें बहुत कुछ समझ में आ जायेगा। तुम देखोगे कि हर व्यक्ति, भले जो तुम्हें हानि पहुँचाने की कोशिश कर रहा हो, वह भी अन्ततः तुमको लाभ पहुँचाता है क्योंकि उसके पीछे से भी भगवान् काम कर रहे हैं। समस्याएँ इस कारण बढ़ जाती हैं क्योंकि हम उन्हें समझ नहीं पाते। जैसे जूडो या ज्युजुत्सु में तुम अपने विरोधी की शक्ति को लेकर उसी के विरोध में लगा देते हो उसी तरह तुम दूसरे की ग़लत वृत्ति का भगवान् के लिए उपयोग कर सकते हो। मैं यह नहीं कहूँगा कि अपने लाभ के लिए, क्योंकि योग में तुम्हारा लाभ या भगवान् का कार्य दो अलग चीज़ें नहीं, एक ही हैं। जीवन के एक बिन्दु पर तुम देख सकते हो कि जो भी चीज़ भगवान् का कार्य नहीं है वह तुम्हारे लिए लाभदायक नहीं हो सकती।

तो, हम जिस नये स्तर पर जाते हैं वह है मानसिक स्तर। मानसिक स्तर विचार, स्मृति, विश्लेषण, तर्क और ऊपर से आने वाले अन्तर्भास का स्थान है। अगर तुम उसे शुद्ध कर सको—इसमें गायत्री मन्त्र बहुत सहायक हो सकता है—अगर तुम सूर्य का ध्यान कर सको और उसकी समस्त ज्योति अपने चारों ओर ला सको तो स्तर शुद्ध हो सकते हैं या यूँ कहें कि समस्त स्तर नहीं बल्कि जो स्तर व्यष्टिगत हो चुके हैं वे शुद्ध हो सकते हैं। श्रीअरविन्द जैसे कोई महान् योगी ही समस्त स्तर को शुद्ध कर सकते हैं, उच्चतर शक्ति को नीचे उतार सकते हैं और सारे स्तर पर ज्योति ला सकते हैं। अतिमानसिक अवतरण यही है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि हम अपने मस्तिष्क के दस प्रतिशत का भी उपयोग नहीं करते, नब्बे प्रतिशत बिना उपयोग के बना रहता है। यह यूनेस्को के एक विवरण से पता चलता है। योग के अनुसार हम अपने मानसिक व्यक्तित्व के हज़ारहवें भाग का भी उपयोग नहीं कर पाते। जैसा कि मैंने तुम लोगों से कहा, प्राणिक व्यक्तित्व दीवार में से भी गुज़र सकता है। मन इससे भी ज़्यादा सूक्ष्म है। अधिकतर लोगों में सुव्यवस्थित मानसिक व्यक्तित्व नहीं होता। अगर तुम अपने मानसिक व्यक्तित्व को व्यवस्थित कर सको तो तुम आसानी से दूसरों से प्रभावित नहीं होगे। तुम जान लोगे कि क्या करना और कैसे करना है।

एक व्यष्टिगत मानसिक व्यक्तित्व का निर्माण कैसे किया जाये?... माताजी ने कहा है कि तुम्हें एक केन्द्रीय विचार चुन लेना चाहिये और अपने मानसिक विचार को व्यवस्थित करना चाहिये (मैं मानसिक व्यक्तित्व नहीं, मानसिक विचार कह रहा हूँ) यानी, मैं केन्द्रीय विचार के इर्द-गिर्द मानसिक समन्वय की बात कर रहा हूँ। मान लो तुमने अतिमानसिक रूपान्तर के विचार का निर्माण किया है तो जो कुछ अतिमानसिक रूपान्तर में सहायता करता है तुम उसे स्वीकार कर लेते हो और जो सहायता नहीं करता उसे त्याग देते हो। हो सकता है कि कोई और व्यक्ति ऐसा हो जिसे अतिमानसिक रूपान्तर में नहीं मानवजाति की सहायता करने में रस हो। हमारा उसके साथ मतभेद हो सकता है क्योंकि हमें यह विश्वास हो कि भारत के उत्थान और मानवजाति की सहायता करने का एक यही तरीक़ा है कि हम अपने-आपको अतिमानसिक बना लें। वास्तव में और कोई मार्ग

नहीं है। हो सकता है कि दूसरा व्यक्ति इस तरह से न देखे, लेकिन उसमें भारत के राष्ट्रीय पुनर्गठन के बारे में कोई अन्य मानसिक दृष्टि हो। अगर उसने एक बार इस विषय में सोच लिया है तो उसे अपने सारे जीवन को इस केन्द्रीय विचार के चारों ओर नियोजित कर लेना चाहिये। इसलिए सबसे पहले हमें उस विचार को पाना चाहिये जिसके चारों ओर हमें अन्य सभी विचारों को संयोजित करना है।...

यहाँ मैं तुम लोगों को दो मज़ेदार उदाहरण देना चाहूँगा। एक है माताजी का जब वे जापान में ध्यान किया करती थीं, उन्होंने देखा कि वे जिन लोगों के साथ ध्यान किया करती थीं उनमें समान विचार आया करते थे, मैं समान आवेश नहीं कहूँगा, समान विचार। मैंने रूस की मनोविज्ञान की एक किताब में पढ़ा था कि जब एक आदमी किसी मनोवैज्ञानिक के पास गया तो उसने कहा, "मुझे कुछ दिखलाओ।" मनोवैज्ञानिक ने काग़ज़ के एक टुकड़े पर कुछ लिख दिया और उसे मोड़ कर उस व्यक्ति को सौंप दिया। कुछ समय बाद व्यक्ति ने अपना कान खुजाना शुरू कर दिया। कुछ समय के बाद उससे काग़ज़

खोलने के लिए कहा गया तो उसने देखा, उसमें लिखा था, "अपना कान खुजाओ।" उस आदमी के जाने बिना उसे कान खुजाने का आदेश दिया गया और उसने खुजाना शुरू कर दिया। तो मानसिक स्तर पर चीज़ें इस तरह हुआ करती हैं।

एक सामूहिक मानसिक स्तर भी होता है। राष्ट्रपति 'क' जब अपने दल में निर्वाचित होना चाहते थे तो उन्होंने अपने दल के बहुत-से स्वयं-सेवकों को मिल कर चिल्लाने का आदेश दिया, "हम 'क' को चाहते हैं! हम 'क' को चाहते हैं!" तो यह सामूहिक विचार का प्रक्षेपण है जो इस तरह के नारों के पीछे होता है। इसमें सामूहिक मन और सामूहिक प्राण कार्यरत होते हैं। वैयक्तिक और सामूहिक दोनों मनों को दिशा दी जा सकती है।
(क्रमशः)

—नवजातजी

तितली महीनों का नहीं, क्षणों का आदर करती है,
फिर भी उसके पास यथेष्ट समय रहता है।

—टैगोर

श्रीमाँ के साथ रवीन्द्रजी का पत्र-व्यवहार

(रवीन्द्रजी ने गुरुकुल काँगड़ी से शिक्षा समाप्त करके श्रीअरविन्द के बड़े गुरुकुल में सन् १९३८ में २१ वर्ष की अवस्था में प्रवेश पाया था। २००१ में अपनी मृत्युपर्यन्त वे यहीं के अन्तेवासी रहे।)

प.ले. का अर्थ है, पत्र-लेखक—सं.

माँ,

एक बचकाना प्रश्न है : क्या पशु-पक्षी भी हमारी तरह भोजन का स्वाद पाते हैं?

हाँ, पाते तो हैं पर वे हमारी तरह उसके बारे में **सोचते** नहीं।
आशीर्वाद। २२ सितम्बर १९६४

माँ,

एक संन्यासी यहाँ रहने के लिए आया था। कुछ ही महीनों में उसने अपना गेरुआ चोला छोड़ दिया और साधारण आदमी बन गया। उसे ध्यान करने का बहुत शौक है, आँखें बन्द करते ही उसका शरीर हिलने-डोलने लगता है और उसे बहुत आनन्द का अनुभव होता है, लेकिन कभी-कभी उसे अपने चारों ओर साँप-ही-साँप दिखायी देते हैं और कभी-कभी वह अपने-आपको जंगली जानवरों के बीच में पाता है। कुछ दिन पहले उसने ध्यान-कक्ष में बाक़ायदा एक दृश्य उपस्थित कर दिया। मैंने उसे सलाह दी है कि जब तक आपका उत्तर न आ जाये वह ध्यान न करे।

हो सकता है कि संन्यासी-चोला छोड़ने का भय (शायद अवमानसिक) उसके अन्दर साँप आदि के आक्रमण के रूप में अनूदित होता है। तुम उससे कह दो कि वह डरे नहीं, मुझे सूचना दे दी गयी है और कोई उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

उसे फिर से ध्यान करने की कोशिश करने दो—वह यह विश्वास रखे

कि उसकी रक्षा की जा रही है। लेकिन पहले वह औरों के बीच में प्रयास न करे। अगर उसका ध्यान शान्ति के साथ होने लगे तो वह फिर से औरों के साथ ध्यान कर सकता है।

आशीर्वाद। ७ दिसम्बर १९६४

प.ले. की किसी के साथ यह विषय लेकर बहस हो गयी कि काम क्या है। उसके बारे में लिखते हुए वह कहता है—आख़िर मेरा कहना था, "माताजी जिस किसी चीज़ को काम के रूप में स्वीकार कर लें वही काम है।"

मैं निराश नहीं हूँ, लेकिन मुझे इस बात में मज़ा आता है कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह यद्यपि मेरी दृष्टि में काम का क-ख-ग भी नहीं है फिर भी मुझे उसे करते जाना चाहिये क्योंकि आपकी करुणा उसे स्वीकार करती है!

आह! तुम बहुत होशियार होते जा रहे हो और इस सिद्धि तक पहुँच रहे हो कि हम कुछ भी नहीं हैं, हम कुछ नहीं जानते। हम कुछ नहीं कर सकते। केवल परम प्रभु जानते हैं, करते हैं, और हैं।

सप्रेम। १९६४

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ३४६-४८

'परम प्रज्ञा' सब कुछ देख रही है।

एक बात के बारे में हमें विश्वास होना चाहिये—जो कुछ होता है वह ठीक वही होता है जो होना चाहिये ताकि हमें तथा जगत् को जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी लक्ष्य तक पहुँचा सके—लक्ष्य है, भगवान् के साथ ऐक्य और अन्त में भगवान् की अभिव्यक्ति।

और यह श्रद्धा—सच्ची और सतत—एक साथ हमारी सहायता और सुरक्षा है।

प्रेम।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ३६६

उमर की ऐसी की तैसी

घर चाहे कैसा भी हो
उसके एक कोने में
खुल कर हँसने की जगह रखना।
सूरज कितना भी दूर हो
उसको घर आने का रास्ता देना,
कभी-कभी छत पर चढ़ कर तारे अवश्य गिनना,
हो सके तो हाथ बढ़ा कर
चाँद को छूने की कोशिश करना।
अगर हो लोगों से मिलना-जुलना
तो घर के पास-पड़ोस ज़रूर रखना।
भीगने देना बारिश में, उछल-कूद भी करने देना
हो सके तो बच्चों को
एक काग़ज़ की कश्ती चलाने देना।
कभी हो फ़ुरसत, आसमान भी साफ़ हो
तो एक पतंग आसमान में चढ़ाना,
हो सके तो एक छोटा-सा पेंच भी लड़ाना।
घर के सामने रखना एक पेड़
उस पर बैठे पक्षियों की बातें अवश्य सुनना।
घर चाहे कैसा भी हो, घर के कोने में
खुल कर हँसने की जगह रखना।
चाहे जिधर से गुज़रिये
मीठी-सी हल-चल मचा दीजिये;
उम्र का "हर एक दौर" मज़ेदार है,
अपनी "उम्र" का मज़ा लीजिये।
ज़िन्दादिल रहिये जनाब, ये चेहरे पे उदासी कैसी...
वक़्त तो बीत ही रहा है,
उमर की ऐसी की तैसी...

—अटल बिहारी बाजपेयी

मैं न होता तो क्या होता?

एक बार हनुमानजी ने प्रभु श्रीराम से कहा कि अशोक वाटिका में जिस समय रावण क्रोध में भर कर तलवार लेकर सीता माता को मारने के लिए दौड़ा, तब मुझे लगा कि इसकी तलवार छीन कर इसका सिर काट लेना चाहिये, किन्तु अगले ही क्षण मैंने देखा कि मन्दोदरी ने रावण का हाथ पकड़ लिया, यह देख कर मैं गद्‌गद हो गया कि यदि मैं कूद पड़ता तो मुझे भ्रम हो जाता कि यदि मैं न होता तो क्या होता?

बहुधा हमको ऐसा ही भ्रम हो जाता है, मुझे भी लगता कि यदि मैं न होता तो सीताजी को कौन बचाता? परन्तु आज आपने बचाया ही नहीं, बल्कि बचाने का काम रावण की पत्नी को ही सौंप दिया। तब मैं समझ गया कि आप जिससे जो कार्य लेना चाहते हैं, वह उसी से लेते हैं। किसी का कोई महत्त्व नहीं है!

आगे चल कर जब त्रिजटा ने कहा कि लंका में बन्दर आया हुआ है और वह लंका जलायेगा तो मैं बड़ी चिन्ता में पड़ गया कि प्रभु ने तो लंका जलाने के लिए कहा ही नहीं है और त्रिजटा कह रही है तो मैं क्या करूँ? पर जब रावण के सैनिक तलवार लेकर मुझे मारने के लिए दौड़े तो मैंने अपने को बचाने की तनिक भी चेष्टा नहीं की, और जब विभीषण ने आकर कहा कि दूत को मारना अनीति है, तो मैं समझ गया कि मुझे बचाने के लिए प्रभु ने यह उपाय कर दिया है।

आश्चर्य की पराकाष्ठा तो तब हुई, जब रावण ने कहा कि बन्दर को मारा नहीं जायेगा पर पूँछ में कपड़ा लपेट कर घी डाल कर आग लगायी जाये तो मैं गद्‌गद हो गया कि उस लंका वाली सन्त त्रिजटा की ही बात सत्य थी, वरना लंका को जलाने के लिए मैं कहाँ से घी, तेल, कपड़ा लाता और कहाँ आग ढूँढ़ता, पर वह प्रबन्ध भी आपने रावण से करा दिया, जब आप रावण से भी अपना काम करा लेते हैं तो मुझसे करा लेने में आश्चर्य की क्या बात है!

इसलिए हमशा याद रखें कि संसार में जो कुछ भी हो रहा है वह सब ईश्वरीय विधान है। हम और आप तो निमित-मात्र हैं, इसलिए कभी भी यह भ्रम न पालें कि... मैं न होता तो क्या होता?

आप ही का इन्तज़ार था...

कहते हैं न कि प्रभु की लीला सचमुच अपरम्पार होती है—बच्चे क्या, बड़े क्या, जवान क्या और बूढ़े क्या, स्त्री क्या या पुरुष क्या... सभी ने कभी-न-कभी उनकी लीला को देखा, उसको महसूस किया-ही-किया होगा। यहाँ भी उन्हीं के द्वारा बनायी एक योजना की कहानी दी जा रही है, जो कहते हैं कि सच्ची घटना पर आधारित है और जिसका रसास्वादन हमारे *पुरोधा* के पाठकों ने पहले कभी किया भी है। अस्तु—

हर्मन और मैंने अपनी खिलौनों की दूकान पर एक नज़र डाली। रात के ११ बज गये थे, २४ दिसम्बर—क्रिस्मस की पूर्व रात्रि। हम दोनों थक कर चूर-चूर हो गये थे। हर साल की तरह इस साल भी हमारे खिलौनों की इतनी बिक्री हुई थी कि दिसम्बर का पूरा महीना हमने जी-तोड़ मेहनत में बिताया और हर साल की तरह इस साल भी हम पति-पत्नी क्रिस्मस की पूर्व रात्रि को चैन और सन्तोष की साँस लेते हुए अपनी दूकान बन्द करने ही वाले थे कि मेरी नज़र एक चमचमाते पैकिट पर पड़ी। ओह! यह कौन उपहार का 'ऑर्डर' देकर अपना पैकिट नहीं ले गया? उस इकलौते उपहार को देख हमारे क़दम ठिठक गये। हिसाब की किताब टटोली और पाया कि दस दिन पहले कोई पेशगी के तौर पर एक डॉलर भी जमा करवा कर गया था, लेकिन क्या उपहार था उसमें? हमें पता नहीं। मैंने हर्मन से कहा—"कुछ देर और इन्तज़ार कर लें नहीं तो क्रिस्मस के त्योहार पर हमारे दिल में यही फाँस रहेगी कि कोई बच्चा अपने उपहार से वञ्चित रह गया!" थकान के मारे हर्मन की पलकें हालाँकि मुँदी जा रही थीं पर हमने इन्तज़ार किया, प्रार्थना की, लेकिन हमारे हाथ हताशा ही लगी। भारी मन से आख़िर रात के ११.३० बजे दूकान बढ़ा कर हम घर आ गये।

अगली सुबह-सुबह हमारे बेटे टॉम ने जब अपने उपहार खोले तो न जाने क्यों मैं अपने बेटे की ख़ुशी में पूरी तरह से शरीक न हो पायी, मेरी आँखों के सामने वही चमकता हुआ पैकिट घूम रहा था जिसे लेने कोई न आया था और घूम रही थीं किसी बच्चे की सूनी-सूनी आँखें!!

नाश्ते के बाद टॉम अपने दोस्तों को उपहार दिखलाने के लिए घर से दौड़ पड़ा, हर्मन ने नींद पूरी न होने की वजह से रज़ाई की शरण ली। रह

गयी मैं अकेली—दुविधा में घिरी हुई। कभी मेरा मन कहता—"अरे, सारे शहर की चिन्ता अपने सिर क्यों ओढ़ रही हो। कोई न ले गया तो न सही, उसने कोई दूसरा उपहार ले लिया होगा!" तो दूसरा भाग कहता—"और अगर यही उपहार उसका आसरा हो??"

मैं घर में छटपटाने लगी। खिड़की से बाहर नज़र डाली तो लगातार रूई जैसी झरती बर्फ़ के दर्शन हुए। धरती और आसमान मानों बर्फ़ से एकाकार हुए जा रहे थे। मैंने मन में ठान ली। हर्मन जगे होते तो मुझे बेवकूफ़ क़रार देते, लेकिन मैं अपने कसमसाते हृदय की बात अनसुनी न कर पायी। सिर से पैर तक गरम कपड़ों से लैस, हर्मन के बिस्तर के पास "ज़रा दूकान तक जा रही हूँ" पुर्ज़ा छोड़ मैं घर से निकल पड़ी। ठण्ड इतनी थी कि दाँत से दाँत बज रहे थे, बर्फ़ की ऐसी चादर बिछी थी कि ज़रा-सा पैर बेढब पड़ा नहीं कि आदमी सर्राटे से रपटता हुआ कहीं का कहीं जा पहुँचे! ख़ैर, बचती-बचाती दूकान तक पहुँची—यह क्या? दो बच्चे मेरी दूकान के फाटक के ठीक सामने मौजूद थे। एक की उम्र शायद आठ साल की हो और दूसरा सम्भवतः पाँच साल का। "हे भगवान्, तुम दोनों यहाँ क्या कर रहे हो?"

"देखा, मैंने कहा था वे ज़रूर आयेंगी।" बड़े ने ख़ुशी से उछलते हुए अपने छोटे भाई की आँखें पोंछते हुए कहा। छोटे ने मुझे नज़रें उठा कर देखा, उसकी आँखों में मानों सौ-सौ मोमबत्तियाँ जल उठीं। मेरा हृदय भर आया।

"तुम दोनों यहाँ इतनी ठण्ड में क्या कर रहे हो?" मैंने दूकान का दरवाज़ा खोल उन्हें अन्दर खींचते हुए पूछा। मैंने देखा, ग़रीब बच्चे थे, ठण्डक से बचने के लिए न सिर पर टोपी थी न हाथों में दस्ताने। पैरों में जो पहने थे उन्हें किसी समय जूतों की संज्ञा मिली होगी! मैंने उनके बर्फ़ जैसे ठण्डे हाथों को अपने हाथों की गरमाई पहुँचायी और उन्हें हीटर के एकदम पास ले आयी।

"हम आपका इन्तज़ार कर रहे थे" बड़े लड़के ने जवाब में कहा। यह मेरा छोटा भाई है जिम्मी, इसे इस साल 'क्रिस्मस फ़ादर' के यहाँ से छोटा-मोटा, कैसा भी उपहार न मिला। हम ग़रीब ज़रूर हैं लेकिन 'सैण्टा' क्रिस्मस पर हमारा पूरा ख़याल रखते हैं। अपने किसी-न-किसी फ़रिश्ते को आदमी

के रूप में हमारी गलियों में २४ की रात तक ज़रूर भेज देते हैं। लेकिन न मालूम इस साल शायद बर्फ़ इतनी पड़ी या रास्ते इतने ख़राब हो गये कि अभी तक कोई फ़रिश्ता हमारी गली तक पहुँचा ही नहीं! अब मैं इस जिम्मी को कैसे समझाऊँ।"

रुआँसे जिम्मी की आवाज़ बीच में फूट पड़ी—"और इस साल पहली बार मैंने "पापा क्रिस्मस" से अपने लिए बड़ी चीज़ माँगी थी—'स्केट्स', क्योंकि मैंने समुद्र-तट पर कई बच्चों को 'स्केट्स' पर हवा की तरह सर्र... सर्र... भागते देखा था...।"

अपने छोटे भाई के कन्धे पर हाथ रखते हुए बड़ा बोल उठा—"देखिये, अब मैं अपने भाई के लिए एक जोड़ी 'स्केट्स' आपसे ख़रीदना चाहता हूँ।" कहते हुए बड़ा भाई अपनी आँखों से सारी दूकान का मुआयना करने लगा।

"ख़रीदना!" उनकी दशा देख मैं मन ही मन बुदबुदायी। बड़ा अपनी रौ में बोलता गया—"ये मेरे पास तीन डॉलर हैं। मेरे ख़याल से इससे ज़्यादा नहीं लगेंगे" कहते-न-कहते उसने एक एक डॉलर के तीन पुराने बिल अपनी जेब से निकाल कर सामने बढ़ा दिये।

मैंने उन बिलरूपी पैसों को देखा और देखा उन दोनों चेहरों को। जिम्मी की आँखें ख़ुशी से नाच रही थीं, बड़े भाई के अन्दर आत्मविश्वास छलक रहा था। फिर मैंने नज़र घुमायी अपनी दूकान पर जहाँ नहीं के बराबर सामान था।

"लेकिन बच्चो, मेरी दूकान में तो स्केट्स..." और तभी मेरी नज़र उस चमकते, सुनहरे, लम्बे पैकिट पर ठहर गयी जिसे लेने कोई न आया था।

मैंने झपट कर उसे उठा लिया। मेरी आँखें प्रार्थना में मुँद गयीं। "हे ईश्वर! हे ईश्वर..."। और चमत्कार... उसमें से एक जोड़ी "स्केट्स" ही निकले!

मैं अभी तक बुदबुदाती जा रही थी... "लाज रखना प्रभो! ये जिम्मी के नाप के हों...!"

चमत्कारों का चमत्कार घटित हो गया।

जिम्मी भाई से लिपट गया। भाई तीनों बिल मेरी हथेली पर रखते हुए बोला—"सचमुच आपका लाख-लाख शुक्रिया। आप न आतीं तो हम यह ख़रीद ही न पाते!"

मैंने दोनों के गाल थपथपाते हुए प्यार से कहा—"नहीं, नहीं, इसके पैसे मैं न लूँगी। यह "फ़ादर क्रिस्मस" का उपहार है तुम्हारे भाई के लिए। हाँ, तुम अपने इन पैसों से अपने और भाई के लिए दो जोड़ी ऊनी दस्ताने और मोज़े यहाँ से ख़रीद लो।" दोनों इतने अचरज के साथ यूँ बड़ी-बड़ी आँखों और खुले मुँह से मुझे ताकने लगे मानों उस मुद्रा में मूर्ति ही बन गये हों। और जब उन्हें मेरी बात समझ में आयी तो ख़ुशी के मारे इतनी ज़ोर से चिल्लाये कि उनकी आवाज़ 'पापा क्रिस्मस' तक ज़रूर पहुँच गयी होगी।

मैंने अपने हाथों से उन दोनों को दस्ताने और मोज़े पहना दिये। ज़िन्दगी ने उस पल मेरे हाथों में संसार की सारी ख़ुशियाँ उँडेल दीं जब उन दोनों ने मेरे गालों पर भी उपहार-स्वरूप एक-एक चुम्बन मढ़ दिया और साथ ही साथ छोटा जिम्मी मेरी तरफ़ देख कर आँखों की चमक के साथ बोल उठा—"देखा भाई, सैण्टा ने इस साल सबसे अच्छा फ़रिश्ता भेजा।" फिर मेरा हाथ पकड़ कर कह उठा—"आपने कितने सस्ते दाम में हमें ये दस्ताने और मोज़े दे दिये। बस तीन डॉलर में इत्ता बढ़िया सामान!!!"

हम तीनों हाथों में हाथ डाले दूकान से बाहर निकले। दूकान पर ताला लगाते हुए मैंने बड़े भाई से पूछा—"लेकिन तुम्हें कैसे पता चला कि इस समय मैं यहाँ आऊँगी?"

मैं उस उत्तर के लिए तैयार नहीं थी। उसकी दृष्टि अचल थी, वह धीमे से फुसफुसाया—"मैंने यीशु से तुम्हें भेजने के लिए कहा।"

मैं सिहर उठी—ठण्ड के कारण नहीं—भगवान् की उस अपूर्व योजना के सामने जिसने मुझे घर में बैठने ही नहीं दिया...।

मुझसे विदा ले वे दोनों भाई गलबहियाँ किये हुए अपने घर की ओर चल पड़े, इधर मैं जहाँ-की-तहाँ ठगी-की-ठगी खड़ी रह गयी। बाहर बरफ़ की ठण्डी सादगी बिछी हुई थी, मेरे अन्दर कृतज्ञता और प्रेम की सुनहरी आँच की गरमाई भरी जा रही थी। इतना सुकून मैंने ज़िन्दगी में कभी-कदास ही पाया होगा... मैं 'क्रिस्मस फ़ादर' के आदर में बिछ-सी गयी जिन्होंने मुझे इतनी इज़्ज़त दी कि उन मासूम-ग़रीब बच्चों के दिल का अरमान पूरा करने के लिए मुझे चुना। होठों पर मुस्कानों का ढेर, दिल में ख़ुशियों की बारात लिये और आँखों में सन्तोष के दिये जलाये, मैं भी मन-ही-मन अपने प्रभु से बतियाती हुई अपने घर की ओर बढ़ चली! —वन्दना

वक़्त

किसके लिए रुका है,
किसके लिए रुकेगा।
करना है जो भी कर ले,
ये वक़्त जा रहा है।।
पानी का बुलबुला है,
इन्सान की ज़िन्दगानी
क्षण-भर का अफ़साना,
पल-भर की ये कहानी।
तेरा आयाम तुझको,
सन्देश दे रहा है।
करना है जो भी कर ले,
ये वक़्त जा रहा है।।

—अज्ञात

अग्निशिखा
श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.
संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी
प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१
मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत
सम्पादिका : वन्दना
Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70
दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८
Email: info@aurosociety.org
Website: www. aurosociety.org

केवल कर्म करना उद्देश्य नहीं है; कर्म साधना
का एक साधन है।

*

प्रारम्भ में कर्म के बीच श्रीमाँ की उपस्थिति की स्मृति बनाये रखना आसान नहीं होता; परन्तु कोई यदि कर्म के समाप्त होने के तुरन्त बाद उपस्थिति के बोध को पुनः जगा ले तो यह बिलकुल ठीक है। समय आने पर कर्म के बीच भी उपस्थिति का बोध होना स्वाभाविक बन जायेगा।

श्रीअरविन्द

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

Sri Aurobindo Society
INDORE BRANCH
Creating the Next Future

विनम्र अनुरोध

'श्री अरविन्द-विश्व-निलयम्' नव-निर्माण हेतु

आदि शक्ति मां भगवती एवं परम प्रभु की असीम कृपा और आशीर्वाद से श्री अरविन्द सोसायटी पुडुचेरी शाखा इन्दौर द्वारा एअरपोर्ट के निकट सर्वे क्रमांक 126/8, छोटा बांगड़दा में अपने स्वामित्व की 13,495 वर्गफीट भूमि पर दिव्य समाज निर्माण की आध्यात्मिक गतिविधियों के संचालन हेतु एक शक्तिपीठ पूर्ण योग साधना एवं ध्यान केन्द्र श्री अरविन्द–विश्व– निलयम् के नव–निर्माण का कार्य 25 जनवरी 2021 से शुभारंभ हो चुका है।

आपको यह सूचित करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि उक्त वृहद् कार्य –निर्माण के प्रथम चरण में तल मंजिल, प्रथम मंजिल एवं द्वितीय मंजिल जिसमें सर्व सुविधा युक्त हॉल, श्री माँ – श्री अरविन्द के दिव्य – ग्रन्थों की लायब्रेरी, अतिथि –कक्ष, किचन, डाइनिंग हॉल तथा एक रमणीय उद्यान में श्री अरविंद के दिव्य – देहांश की प्रतिष्ठा हेतु समाधि स्थल के निर्माण का लक्ष्य है। भविष्य में इसे विस्तार देने की योजना है।

इस दिव्य निर्माण कार्य की अनुमानित लागत 2.5 करोड़ रूपये है। यह कार्य सभी के सहयोग तथा सामूहिक प्रयास से ही संभव हो सकता है। आपके द्वारा दी गई दान–राशि को आयकर अधिनियम की धारा 80(G) के अंतर्गत छूट की सुविधा है।

आपकी दान–राशि "श्री अरविन्द सोसायटी इन्दौर" के नाम से Cash /Cheque /DD/ NEFT/ RTGS में स्वीकार कर रसीद प्रदान की जाएगी। आपका आर्थिक सहयोग इस दिव्य कार्य को गति प्रदान करेगा ।

निवेदक

चेअरपर्सन
डॉ.सुमन कोचर
sumankocher@rediffmail.com

सेक्रेटरी
मनोज कियावत
mkiyawat@gmail.com

Branch Office: 541, M. G. Road, Gorakund, OPP. ICICI Bank, Indore (M. P.) – 452 002
Phone: 0731- 2452500, Mob: 9826067685 ,9826066520
Email: sasindore@aurosociety.org, Website: www.sriaurobindosocietyindore.com
Head Office: Puducherry – 605 001, Website: www.aurosociety.org

Bank Details –
A/C Name - Sri Aurobindo Society Indore
SB A/C No.- 0325101016104
Bank Name – Canara Bank
Branch – M. G. Road Indore – 2 (M.P.)
IFSC Code - CNRB0000325

Proposed View

Date of Publication: 1st July 2022
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70

An animation film is in the making

"I have a hundred lives before me yet
To grasp thee in, O spirit ethereal ... ."

SRI AUROBINDO
A New Dawn

For details, visit
www.anewdawn.in
An offering by Sri Aurobindo Society
for the 150th birth anniversary of Sri Aurobindo
Join hands to make this film DONATE NOW!